कला का पुरस्कार

लेखक की अन्य रचनाएं

गंगा माता (नया उपन्यास)

शराबी (उपन्यास) ३॥)

जी जी जी (उपन्यास)

चन्द हसीनों के ख़तूत (उपन्यास) २)

बुधुआ की बेटी (उपन्यास)

घंटा (उपन्यास) २)

दिल्ली का दलाल (उपन्यास)

सरकार तुम्हारी आँखों मे (उपन्यास) २॥)

जब सारा आलम सोता है (कहानी-सग्रह) १)

पंजाब की महारानी (कहानी-सग्रह) १)

रेशमी (कहानी-सग्रह) २।)

निर्लज्जा (कहानी-संग्रह)

चिनगारियाँ (कहानी-सग्रह)

बलात्कार (कहानी-सग्रह)

चौकलेट (कहानी संग्रह)

महात्मा ईसा (नाटक) ३)

गंगा का बेटा (नाटक)

डिक्टेटर (नाटक)

आवारा (नाटक)

कंचनघट (कविता) १)

व्यक्तिगत (सस्मरण निबन्ध) २)

इन्द्र-धनष (विविध) २॥)

राम करे सो होय (एकाकी)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली—६.

कला का पुरस्कार

(विचित्र भाषा, शैली, कथानक)

लेखक

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'
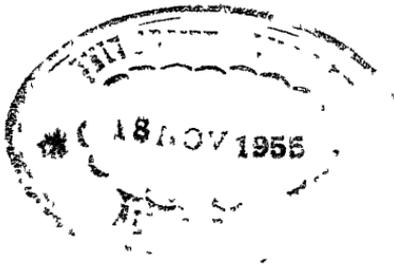
१९५५

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली–६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली–६

मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली

मुखड़ा

- ऐसा लगता है, मै एक बार फिर लिखने के 'मूड' मे आ गया हूँ।
- ऐसा लगता है, सन् १९५५ के अन्त तक मेरी लिखी कम-से-कम आधा दर्जन रचनाएँ प्रकाश मे आकर रहेगी।
- ऐसा लगता है, हिन्दी-साहित्य के न्याय-निर्णय-दिवस तक—जब कि धूल डालने वालों की आँखो में अँगुली डालकर गेहूँ-को-गेहूँ और भुस-को-भुस समझा जायगा—मै वैसा ही शक्ति-शाली और शक्ति-प्रद रहूँगा, जैसा कि दार्शनिको की आँखो में बराबर रहता आया हूँ।
- ऐसा लगता है, हाथ में कुल्हाड़ी लेकर वह आ गया है। वही सब के करतबो का लेखा-जोखा रखने वाला सहज सत्य-वादी लोक-मत।
- ऐसा लगता है, ओ मतलबी, मायावी, मूर्ख आलोचक! अन्त में, तू महा-मूर्ख साबित होकर रहेगा।
- ऐसा लगता है, ऐसा होना ही चाहिये!
- ऐसा लगता है, ऐसा होकर रहेगा!

कला का पुरस्कार—इस सग्रह की कहानियाँ पहले-ही-पहल पुस्तक रूप में प्रकाश में आ रही है। मेरी निगाहो में इस संग्रह की ज्यादातर रचनाएँ बलवती है, विचित्र तो है ही। 'उग्र' का पाठक इन रचनाओ से निराश नही होगा। ऐसा ही हो!

गगा माता—नामक स्त्री-जागरण विषयक मेरा बिलकुल नया उपन्यास प्रेस मे जा चुका है। इस वर्ष के अन्त नही, तो नये वर्ष के आरम्भ तक 'गगा माता' उपन्यास पाठकों के हाथ मे अवश्य आ जायगा।

जय माया की !

नवम्बर, ५४,
नयी दिल्ली

—पाण्डेय बेचन शर्मा, 'उग्र'

शीर्षक-सूची

कला का पुरस्कार

१

कला का पुरस्कार

राजकुमारी चम्पा के पुष्प की तरह सुरंग, सुगन्धित और सुकुमार शरीर पर, धानी रंग की, रेशमी सारी थी; जिसमें, कोई आधा इञ्च चौड़ा सोने का किनारा था। वायु जब कभी उसके सुन्दर आँचल मे लहरें पैदा करती तब भीतर से सुफ़ैद रेशम की कुरती की झाँकी झलक जाती। उस पर भी सोने का काम था तथा उसकी गर्दन राजकुमारी के गले की प्राकृतिक हँसली तक ढीली थी। गर्दन के पास, एक इञ्च चौड़ा, लाल रेशम का कामदार फीता, उसके सरल सौन्दर्य-समुद्र में तूफान पैदा कर रहा था। उसके दोनों हाथों में कटक के, सुगढ़े, स्वर्ण-कंकण थे जिनमें यत्र-तत्र बड़ी सुन्दरता से, मोतियों के खिलखिलाते बच्चे बैठाये गये थे। उसके दोनों पैरों में, हरे मखमल पर ज़री के काम के, सुन्दर और आकर्षक जोड़े थे। उनमें प्रत्येक के मस्तक पर, बड़ी जाति के, एक-एक मूल्यवान मोती, अँगूर की पत्ती के बीच में, जड़े हुए थे। सन्निकट देखने से राजकुमारी विभूति और सौन्दर्य-समूह की प्रतिमा-सी मालूम पड़ती थी।

उसका मुँह अंडाकार था, आँखें आसमानी, मीनाकृति, सजल और बड़ी-बड़ी थीं, ओष्ठाधार सुडौल और रसीली नारंगी की फाँकों-से थे; कपोल खिले हुए थे और उनकी छाती में से गुलाबी रंग फटकर बाहर निकलता-सा मालूम पड़ता था। उसके

हाथो की सुकुमार अँगुलियाँ ससार के चित्रकारों को पागल बना देने वाली थीं; उसकी इकहरी, सुडौल और कुछ लम्बी देह मूर्त्तिकारों की कल्पना की सम्पत्ति थी। उस परिधान में, उस उद्यान में, दूर से देखने पर, वह इन्द्र-धनुष की तरह दिखाई पड़ती थी।

राजा, उसके पिता, उसके सामने जिज्ञासु भाव से खड़े थे; और वह अपनी संकुचित, सुन्दर आँखों को पद-पीठ पर गड़ाये, रत्न-प्रतिमा-सी खड़ी थी।

"बच्ची!"—महाराज ने प्यार से पूछा, "अब देर किस बात की है? संतोषपुर के राजा अपने पुत्र की शादी के लिए व्यग्र हो रहे हैं। तूने भी तो कुमार अनुरागदेव को अपनाने की अनुमति दे दी है। फिर, अब इस शुभ-विवाह-चर्चा को अभी स्थगित रखने की सलाह क्यों देती है? तुझे और क्या चाहिए?"

'पिता जी!"—कुमारी की बड़ी-बड़ी आँखें ऊपर उठीं। "देर होने का कारण मैं नहीं हूँ—क्षमा कीजियेगा—बल्कि, आप ही हैं।"

"क्यों—कैसे?"

"आज से दो वर्ष पूर्व आपने, मेरी शादी के पहले, मुझे जो-जो चीज़ें आशीर्वाद स्वरूप देने की प्रतिज्ञा की थी उनमें से एक बहुत आवश्यक चीज़ तो आज तक आपने मुझे दी ही नहीं।"

महाराज श्रवण-समीप के सित केशों मे उँगली डालकर विचारने लगे।

"और क्या बाकी है बेटी? मैंने प्रतिज्ञा की थी कि तुझे पूर्ण-पंडिता बनाकर, भारत भ्रमण-कराकर, तेरी इच्छा के अनुरूप वर ढूँढकर, उसके प्रेमी हाथों में सौंप दूँगा। और सौंप दूँगा

इस कन्दर्पपुर राज्य की पाई-पाई उस बच्चे को। मैं स्वयं तपस्या और लोकोपकार के काम करने के लिए तीर्थों बनों और पर्वतों के शान्ति-प्रद-राज्य का प्रबन्धक बनूँगा। यह सभी तो मैं करने के लिए तैयार हूँ। फिर, तुझे और चाहिए क्या ?"

"और वह कलाकुंज ? भूल ही गये आप उसको।"

"ओहो !"—राजकुमारी की पीठ पर प्रेम से हाथ फेरते-फेरते महाराज ने कहा—"बेशक ! मैं भूल ही गया था 'कलाकुंज' को ! और, कितनी जरूरी चीज़ भूल गयी थी। बेटी, यह सब बुढ़ापे का दोष है। चाहे देखने मे मेरा शरीर मज़बूत भले ही मालूम पड़ता हो, पर, अब अस्सी बरस से ऊपर की अवस्था हो चली। अब धीरे-धीरे सभी प्रकृति-प्रदत्त शक्तियाँ जिससे मिली थीं उसी के पास लौटी चली जा रही है।"

उसी समय महाराज ने, मन्त्री को बुलवाकर, आज्ञा दी कि देश भर से चुने-चुने शिल्पी और भवन-निर्माण कलापटु कारी-गर बुलाये जायँ। विवाह के पहले, राजपुत्री के रहने के लिए, एक परम सुन्दर महल और उद्यान बनवाया जायगा।

● ●

कलाधर शब्द में—सभी जगह कोई-न-कोई सुन्दरता खोजने वालों को—चाहे सौन्दर्य की थोड़ी-बहुत झाँकी दिखाई भी पड़े, पर श्रीपुर के कलाधर लोहार में शारीरिक सौन्दर्य नाम-मात्र को भी नहीं था। वह लम्बा था, मगर, इतना दुबला-पतला कि देखने वालों के मन में एक तरह की बेचैनी पैदा कर देता। उसकी नाक बन्दर की तरह चपटी और उसके होंठ बनमानुष की तरह वीभत्स। उसके कपोल हड्डीले तथा पिचके और आँखे निस्तेज तथा बुरी तरह घुसी हुई थीं।

कलाधर को वह शिक्षा नहीं मिली थी जिसका आजकल मनुष्यता की छाती पर बड़ा दबदबा है। बल्कि, उस अद्भुत ने

तो अपनी पैतृक-विद्या का भी अभ्यास नहीं किया था। उसका बाप अपने लोहारखाने मे बैठकर उसे काम सिखाने या धौंकनी चलाने के लिए बुलाता, तो वह, किसी-न-किसी बहाने घर के बाहर भागा जाता, गाँव की उदार रक्षिका रामा नदी के तट पर चला जाता और कुछ छोटे फक्कड़ दोस्तों की सहायता से बालू और मिट्टी के भवन बनाता। यही उसका नित्य का और प्राण-प्यारा व्यापार था। माँ से एक मुट्ठी चना और ज़रा-सा गुड़ माँगकर वह प्रात. आठ बजे नदी-तट पर दोस्तों के साथ पहुँच जाता। चने और गुड़ की मजदूरी देकर उनसे मिट्टी और सूखा-गीला बालू मँगवाता और भिन्न-भिन्न प्रकार के महल, बँगले और भवर्न बनाता। लड़के उसकी निर्माण-बुद्धि को देखकर दंग रह जाते। भवनों की सजावट के सिलसिले में बनाई हुई उसकी मिट्टी की परियाँ और देव देखकर गाँव के बड़े-बूढ़े भी, अपनी सारी बुजुर्गी के बावजूद, छके-से रह जाते। मगर, उसके परिवारा और दुनियादार बाप को उसके बालू के महल ज़रा भी न रुचे, मिट्टी की मूर्त्तियाँ ज़रा भी न जँचीं। जब, उसे बहुत तोल-जोख कर लेने पर, यह पता चल गया कि कलाधर सिवा आवारा और नालायक़ के कुछ भी नहीं है, तब, तुरन्त ही, एक दिन उसने उसको घर के बाहर निकाल दिया।

"निकल मेरे घर से,"—पिता ने उसे खदेड़ते हुए आशीर्वाद दिया, "मेरे पास इतना धन नहीं कि मैं तुझे धोबी के कुत्ते की तरह पोसूँ। जा! दुनिया में बालू की दीवारे उठा और कमा अपनी रोटी!"

कलाधर की करुणा-मयी माँ कलपकर रह गयी, मगर कठोर पिता पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उसने उस नालायक को निकालकर ही दम लिया।

इसके बाद, दस बरसों तक, कलाधर के दुख-सुख का किसी

को पता न रहा। दुनिया की दृष्टि से जो नालायक़ हो भला उसे पूछता कौन है। उसके निकाले जाने के दो-तीन बरसों के भीतर ही उसकी याद भी लोगों के स्मृति-पट से पुँछ गई। मगर, उसकी वह माँ उस नालायक़ को न भूल सकी। वह बराबर उसकी याद मे कलपती और आँसू बहाती रही। वह, पति की चोरी से, उसके लिए व्रत और पूजा भी करती, देवता से वरदान भी माँगती कि मेरे कलाधर को एक बार फिर लौटा दो। वह नालायक ही सही, पर, मैं उसको प्यार करती हूँ।

आख़िर, दस वर्षों बाद, गाँव मे एक दिन सनसनी-सी फैल गयी, इस समाचार से कि कलाधर तो जीवित है! जीवित ही नहीं, अब तो बड़ा भारी शिल्पी भी हो गया है। पिछले दस वर्षों मे, भारत के अनेक भागो मे घूमकर, उसने भवन-निर्माण-कला का ख़ूब ही अध्ययन और अभ्यास किया है। उनकी अन्तिम परीक्षा जयपुर राज्य मे हुई है, जहाँ से वह कल लौटा है। राजा की ओर से उसे प्रचुर पुरस्कार और प्रशंसा-पत्र मिले हैं। आज उसकी माता निहाल हुई बैठी है। आज उसका दरिद्र और बूढ़ा बाप मालामाल होकर बैठा है। ओहो! धन्य है कलाकार! ईश्वर सात शत्रुओं को भी ऐसे ही पुत्र दे!

दस वर्ष पूर्व का नालायक कलाधर आज, रकम और नाम पैदा करते ही धन्य हो गया। अब लोगो की समझ में यह बात आयी कि समय आने पर, बालू की दीवार खड़ी करने वाला प्राणी सोने की दीवार भी खड़ी कर सकता है।

इसके बाद देश के कोने-कोने से कलाधर की माँग आने लगी। जयपुर में उसने जो अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की उससे, देश के सभी शिल्पकारों और कला-प्रेमियों पर, उसकी एक सात्विक धाक-सी बैठ गयी। कारीगर स्वयं ही पूँजीपतियों को सुझाते कि यदि कलाधर भी बुलाया जाय, तो महल या मकान मे

जान आ जाय। मगर, जयपुर के बाद, कलाधर फिर कहीं गया नहीं। उसने एक बार पुनः कुछ निठल्लों को ढूँढ लिया और वह एक बार पुनः रामा के तट पर बालू के महल बनाने और बिगाड़ने लगा। यदि कभी कोई उससे पूछता कि क्यों कलाधर किसी राजा के यहाँ जाकर यही काम आदर और उपहारों में क्यों नहीं करते? तो, उसके भयानक मुँह पर एक विचित्र घृणा-पूर्ण हँसी चमककर मूर्छित हो जाती। वह कहता—

"ये अमीर क्या जाने कि कला क्या होती है? ये कलाकार के गुणों से अधिक महत्व अपने पैसों को देते हैं। और, मेरे लिए, जब तक सूखी लिट्टियाँ और बहन रामा का स्वादिष्ट जल है तब तक पैसों की कोई ज़रूरत नहीं। भवन रचता हूँ मैं, कलेजे का ख़ून होता है मेरे, और नाम होता है पैसे वाले का। बाज़ आया मैं कला के ऐसे वेश्याचार से। मेरे लिए ये बालू के महल ही बहुत हैं। इन्हीं को, अपनी प्रसन्नता के लिए, सँवार और बिगाड़कर मैं अपने जीवन को धन्य समझता हूँ।"

लोग अनुमान कर लेते हैं कि यह अपढ़ कलाधर हमेशा का मूर्ख और पागल है, आती हुई विभूति को लात मारता है और मिट्टी-बालू को सर-आँखों पर चढ़ाता है।

● ●

प्रातः सन्ध्या समाप्त कर ज्योंही महाराज उठे त्योंही नित्य-नियमानुसार, रत्न-जड़ित दो थालियों में जलपान की स्वच्छ सामग्री लिये, राजकुमारी उनके सामने उपस्थित हुई। महाराज राजकुमारी के हाथों जलपान करते थे और मारे प्रेम और वात्सल्य के उसी के सुधासिक्त-करों का परोसा भोजन भी करते। रत्न-खचित स्वर्ण चौकी पर बैठकर प्रसन्न-वदन महाराज जल-पान करने लगे।

"कोई है?"—जलपान करते-करते उन्होंने पुकारा। तुरन्त ही

दो सुन्दरी सेविकाएँ, हाथ जोड़कर, सामने आ खड़ी हुईं। महाराज ने आज्ञा दी, "मन्त्रिवर को बुलाओ!"

मन्त्री ने आकर, सजग रूप से, यथानियम, अपने धर्मावतार को प्रणाम किया।

"क्या समाचार है भाई?"—महाराज ने अपनी बड़ी-बड़ी धवल आँखें मन्त्री की झुकी हुई आँखों पर रखते हुए, गम्भीर भाव से पूछा, "शिल्पी आये? अब तो विलम्ब बुरा मालूम पड़ता है। कलाकुंज के निर्माण में तुरन्त हाथ लगना चाहिए।"

महाराज की बातों से कुमारी की मोहिनी आँखें चमक उठीं। उन दोनों बेजोड़ नील-मणियो की वे दोनो बे-मोल श्यामोज्ज्वल पुतलियाँ इस तरह नाच उठीं, जैसे नील-समुद्र मे 'फास्फरसी' मछलियाँ। उन स्वादिष्ट आँखों की उस सुधा-ज्योति को, वात्सल्य-पूरित-मन महाराज ने भी देखा। उनका जलपान मधुरतम हो गया।

"देश भर के चुनिन्दे वास्तुविद्या-विशारद, प्रसिद्ध मूर्त्तिकार और सुचतुर कलाकार एक सप्ताह से श्रीमान् की राजधानी मे आकर ठहरे हैं।"—विनम्र मंत्री ने कहा, "मगर ..श्रीमान्.. महाराज...!"

"हाँ कहो-कहो! जब सभी आ गये हैं तब और कौन-सी बाधा है? वह भी सुनूँ।"—महाराज ने जिज्ञासा की।

"अब विलम्ब का कोई दूसरा कारण नहीं है महाराज! लेकिन कारीगरों का यह कहना है कि अगर श्रीपुर का प्रसिद्ध भवन-निर्मायक तथा मूर्त्तिकार कलाधर भी बुला लिया जाय तो 'कलाकुंज' सचमुच कला-कुंज की तरह तैयार हो। इस समय वही देश भर के कलाकारों का मौलि-मुकुट है। मगर, धर्मावतार !"—मन्त्री हिचका।

"ओहो!"—राजकुमारी ने कहा, "श्रीपुर का कलाधर आजकल का सबसे बड़ा कलाकार है और उसी को तुमने नहीं

बुलाया ! किधर है श्रीपुर ? क्यो नहीं बुलाया उसको ?"

"धर्मावतार !"—मन्त्री ने महाराज से निवेदन किया, "कलाकार बड़ा मनस्वी है। उसे तो चारो ओर के राजदरबारों से भवन या मूर्त्ति-निर्माण के लिए निमन्त्रण मिलते है, मगर वह श्रीपुर के बाहर जाता ही नहीं। ऐसा गुणी होकर भी भिखारियो-सा रहता है, और अपने उसी हाल मे मस्त हो, सरिता रामा के तट पर, बालू के महल और मिट्टी की पुतलियाँ बनाया और बिगाड़ा करता है। दीनबन्धु ! वह राजदरबारों के नाम पर भी नाक सिकोड़ता है।"

"वह ऐसा क्यो करता है अमात्य ?"—सरल गंभीरता से महाराज ने पूछा, "कुछ इस बात का पता भी चला ?"

"हाँ महाराज ! जो कुछ मुझे मालूम हुआ है उससे तो यही पता चलता है कि, वह कला पर धन की प्रभुता नहीं स्वीकार करना चाहता। कला के सामने धन को वह ग़ुलाम समझता है। मगर, धनिक तो ऐसा नहीं समझते। इसी से बड़े आदमियों से उसकी पटती नहीं। वह यदि स्वनिर्मित किसी मूर्त्ति की आँखें अध-खुली रखना चाहे और उस मूर्त्ति का ख़रीदार यह इच्छा करे कि नहीं, आँखे तो खुली ही अच्छी होती है, अस्तु, वैसी ही बनें—तो, कलाधर अपना काम वहीं रोक देगा। वह कहेगा—नहीं; श्रीमान्, यह आपका विषय नहीं। इसे मेरी ही इच्छा से तैयार होने दीजिये। मैं ख़ूब जानता हूँ कि इस मूर्त्ति के चेहरे पर अधखुली आँखे ही अधिक आकर्षक मालूम होंगी। उसकी ऐसी ही बातों से उससे और उसके ग्राहको से पटती नहीं। इसी से वह स्वयं कला के इस 'क्रय-विक्रय' से अलग रहता है। केवल 'स्वान्तः सुखाय' मिट्टी का सात्विक संसार, सरिता रामा के तट पर, बनाया और बिगाड़ा करता है।"

"तब तो विचित्र मालूम पड़ता है कलाधर,"—राजपुत्री ने

आश्चर्य से कहा, "उसे जरूर बुलवाओ मन्त्री महोदय ! हमारे महाराज उसे, कलाकुंज के निर्माण मे, पूरी स्वतन्त्रता देगे।"

● ●

जब कलाधर को, राजदूतो से, यह पता चला कि कन्दर्पपुर के प्रतापी महाराज, अपनी पुत्री के लिए, 'कलाकुंज' बनवाना चाहते है और उसके निर्माण का नेतृत्व उसी की शर्तों पर उसे देना चाहते है, तब उसे कुछ लोभ हुआ। लोभ इसका नही हुआ कि सफल होने पर उसे राज-सम्मान मिलेगा। राज-सम्मान को वह क्या समझता है ! धन की आशा भी उसके उस लोभ के हृदय मे नहीं थी।

वह इधर कुछ दिनों से यह विचार कर रहा था कि अगर कोई धनी मेरी शर्तों पर मुझ से कुछ अपूर्व-निर्माण करने को कहे, तो, एक बार इसी बहाने, दुनिया को युगो तक स्तब्ध रखने के लिए, कुछ ठोस, सौन्दर्य की सृष्टि भी कर दूँ। जिस तरह प्राचीन भारतीय-कलाकारो ने दक्षिण भारत के देव-मन्दिरो, अजन्ता और एलोरा की गुहाओ, ताजमहल और मोती और जुमा मसजिदो तथा अनेक मकबरो के रूप मे, आने वाली पीढ़ियो के लिए, अपने यश के महाकाव्य बना छोड़े है, वैसे ही एक बार मैं भी क्यों न करूँ। अभी दुनिया, केवल जयपुर के चमत्कार देखकर, मुझे अच्छी तरह नही समझ सकी है।

यही कलाधर के मन का वह लोभ था जिसका हाथ पकड़कर वह रामा-तट और श्रीपुर छोड़ कन्दर्पपुर जाने को तैयार हुआ।

उसके वहाँ पहुँचते ही दूसरे वास्तु-विद्या-विशारदो ने उसका हार्दिक स्वागत किया, "ओ हो ! धन्यभाग कन्दर्प नगर के कि आपका आसन हिला ! स्वागतम् !"

महाराज उसे देखकर आश्चर्य मे आ गये। यही कलाधर

है ! अरे ! यह शनीचर के पुत्र-सा काला, अ-सुन्दर, मुट्ठीभर का प्राणी, इस समय देश के कलाकारो का सिरमौर है ! विधाता की ऐसी ही लीलाएँ विचित्र कही जाती है !

"कलाधर !"—महाराज ने कहा, "मुझे अपनी कुमारी के लिए 'कलाकुंज' की ज़रूरत है। पचास करोड़ तक रुपये मैं उसके लिए व्यय करने को तैयार हूँ। देश के और सभी कलाकार आ गये है। वह तुम्हारे नेतृत्व में काम करने को तैयार भी है। मैं भी वचन देता हूँ कि तुम्हारे निर्माण मे दख़ल न दूँगा। तुम स्वयं स्थान चुनो, तुम स्वयं नक़्शा तैयार करो, तुम स्वयं आवश्यक चीज़ो की फ़र्मायश करो और कलाकुंज को तैयार करो। मेरा कहना केवल इतना ही है कि कलाकुंज अद्भुत हो, अभूतपूर्व हो और शीघ्र-से-शीघ्र तैयार हो। पानी की तरह धन बहे तो भी कोई चिन्ता नहीं। हज़ारो आदमी नौकर रख लिये जायँ—कोई हर्ज़ नहीं। मगर, कुंज कम-से-कम समय मे तैयार हो। बस, कलाधर ! इस काम से तुम प्रसन्न भर कर दो मुझे, फिर देखो, तुम्हें निहाल कर देता हूँ कि नहीं।"

महाराज के यहाँ से लौटने के पूर्व कलाधर ने अपनी घुसी और भद्दी आँखों से एक राजा के मुख की ओर देखना चाहा; मगर, हाय ! उसकी आँखे किसी दूसरे पर पड़ीं। महाराज की दाहिनी ओर, रेशम के रूमाल से अपना मुख छिपाये, वह किसकी तेजोमयी मूर्त्ति बैठी थी ? राजकुमारी की ?

क्या सचमुच वही—वही कन्दर्पपुर की राजकुमारी !! सचमुच !

कलाधर कुछ चकराया।

● ●

कलाकुंज के तैयार होने में एक बरस और कई महीने लगे। किन्तु आज यदि कोई उसे जाकर देखे, तो कहे बिना न रह

सकेगा कि उसके निर्माण मे दस-पन्द्रह बरसो से कम समय न लगा होगा। उसको इतनी जल्दी तैयार कर देने के लिए, कन्दर्प-पुर राज्य को उक्त समय तक, दस हज़ार आदमी नियुक्त करने पड़े। भारतभर के प्रसिद्ध कलाकारो की बुद्धि और सहयोग से, कलाधर के नेतृत्व में, जब वह अद्वितीय उपवन और प्रासाद बन कर तैयार हो गया, तब उसे देखकर लोग दंग रह गये। उद्यान के लिए देश-विदेश के पुष्प मँगाये गये थे, विविधि लतायें उसमे सजायी गयी थीं, कुंज बनाये गये थे। और उन लताओं और कुंजों और पुष्पों के बीच बड़ी सुन्दरता से फौव्वारे और विचित्र भाव-भंगी की पुतलियाँ सजायी गयी थीं। महल भी नीचे-ऊपर चारो ओर, विविधि प्रकार की मूर्त्तियों से सज्जित किया गया था। उन मूर्त्तियो मे कहो रामायण की किसी घटना का चित्रण था और कहीं महाभारत और बुद्ध-चरित्र की सुन्दर कथाओ का।

कलाकुंज के लिए कलाधर ने स्थान भी कैसा अद्भुत चुना था। कन्दर्पपुर से दस कोस उत्तर एक नदी बहती है, जिसका नाम 'मदिरा' है। उसका रंग गाढ़ा काला है। वह गहरी भी काफी है। उसके तट पर कोई पचास बीघे ज़मीन घेरकर, कलाकुंज बनाया गया। और कुंज का मुख्य द्वार रखा गया उस ओर जिधर नदी उसके चरण पखारती थी। संगमरमर की सीढ़ियो वाला पक्का घाट बनाया गया, सुन्दर-सुन्दर काले पत्थरों की बुर्जियाँ बनायी गयीं और कलाकुंज के फाटक से नदी के लहराते आँचल तक थोड़े-थोड़े अन्तर पर—अजन्ता के ढंग की मूर्त्तियाँ, अपने हाथो या माथो पर प्रकाश लिये, विविध भावों में खड़ी की गयीं। कलाकुंज का फाटक लाल पत्थर का बनाया गया और शेष भवन सुफैद मारवल का। मदिरा के तट से कलाकुंज का प्रवेश-द्वार कितना मोहक, कैसा अद्भुत दिखाई

पड़ता है, यह वर्णन करने की बात नहीं अनुभव करने की बात है। कहा जाता है कि कुंज के तैयार होने पर जब मन्त्री ने खर्च का हिसाब किया तब मालूम हुआ कि कुल बयालीस करोड़ रुपये खर्च हुए है।

मगर, उक्त रकम में से कलाधर को सिवा साधारण भोजन-सामग्री के और कुछ भी नहीं मिला था। शायद उसने कुछ माँगा ही नहीं और दिये जाने पर भी कुछ लिया नही। जब-जब भी महाराज या मत्री उससे कुछ लेने का आग्रह करते तब तब वह यही कहता कि अभी तो काम हो ही रहा है, पहले इसे समाप्त हो लेने दीजिये, फिर एक साथ ही, एक ही दिन, जो कुछ देना होगा, कृपा कर दे दीजियेगा।

कलाधर की उक्त विशेषताओ पर राजकुमारी का भोलापन मुग्ध हो गया। वह प्रायः रोज़ ही एक बार कलाकुंज की निर्माण-गति का निरीक्षण करने के लिए मदिरा के तट पर जाती। और वहाँ उस कुरूप कलाकार की बुद्धि का एक-एक चमत्कार देखकर ठगी-सी रह जाती। वहाँ जो कोई भी सुन्दर काम उसे दिखाई पड़ता, उसके बारे में पूछे जाने पर यही पता चलता कि वह कलाधर की बुद्धि की उपज है।

कलाधर से भी रोज़ ही राजकुमारी की भेंट होती। और वह जब उसके सामने जाती तभी उसको किसी-न-किसी मूर्त्ति का कोई-न-कोई अंग सँवारते हुए पाती। राजकुमारी को अपने पास आती देख वह एक बार उसकी ओर अपनी नीरस आँखों से देखकर फिर गम्भीर भाव से खड़ा हो जाता, ज़रा माथा झुकाकर कुमारी के प्रति आदर का भाव प्रकट करता और फिर, अपनी टांकी सँभालकर मूर्त्ति-रचना में लग जाता। राजकुमारी भी आश्चर्यचकित भाव से खड़ी-खड़ी उसकी हस्तचातुरी घंटों तक निहारा करती, मगर, जब कभी उसकी रचना देखते-देखते उसके

कुरूप मुख पर राज-कन्या की आँखें बिछ जाती तब वह न जाने क्यों उस कुरूपता से 'गनगुना'-सी उठती। कैसा बदशक्ल था वह कलाधर। देखने में, बातचीत करने में, और अपनी भावभगियों में, चारों ओर से, वह नीरस, कुरूप और अनाकर्षक था। और फिर भी भारतभर के कलाकारों का नेता था। पत्थर में भी जान डालने वाला था। अनोखा भवन-निर्माण-विद्या-विशारद था। कभी-कभी राजकुमारी विधाता की इस विषम योजना पर तरस खाती और कोसती उस स्रष्टा को। कलाधर को ऐसा वीभत्स और कुरूप बनाकर विधाता ने बड़ा क्रूर परिहास किया था।

राजकुमारी ने कई बार इस बात का भी अनुभव किया कि, वह कुरूप कलाकार कभी-कभी उसकी आँखे बचाकर, अपनी खोखली आँखों से बड़े प्रेम से उसे देखता, पर, उसके देखने से राजकुमारी प्रसन्न न होती। न जाने क्यों वह कुरूप उसके कोमल हृदय को घृणा से भर देता। पर, इतने पर भी, राजकुमारी उसके पास नित्य ही जाती और उस असुन्दर द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि का चमत्कार देखती।

"तुम परिश्रम तो बड़ा करते हो कलाधर...!"—एक दिन राजकुमारी ने उससे पूछा, "फिर रुपये-पैसे से क्यों भागते हो? तुम्हें इस अमूल्य परिश्रम और कला-सृष्टि का पुरस्कार भी लेना चाहिए।"

"ले लूँगा राजकुमारी!"—अपनी सूखी दृष्टि से राजकुमारी की सखियों के कपोलों पर मुस्कान की लाली फेरता हुआ वह उत्तर देता, "आपकी कृपा से सभी आवश्यक चीजें तो मुझे मिल ही रही हैं। पुरस्कार भी कभी ले लूँगा। जल्दी क्या है?"

"तुम्हारी कला ऐसी अपूर्व हो रही है कलाधर!"—राजकुमारी कहती, "कि मेरा वश चले तो मैं तुम्हे कन्दर्पपुर का आधा राज्य सौंप दूँ। ओह! तुम आदमी नहीं देवता हो।"

"कलाधर राज्य लेकर क्या करेगा राजकुमारी ?"—वह उत्तर देता, "उसके लिए तो सरिता का तट और एकान्त और कला-सृष्टि की कुछ सामग्री ही बहुत है। मुझे राज्य नहीं चाहिए।"

"पिता जी कहते थे कि कलाधर को पुरस्कारस्वरूप कई गाँव और एक नौलखा हार दिया जायगा। क्यों, तुम इस पुरस्कार से प्रसन्न होगे कलाधर ?"—कलाधर ने, मुँह से कुछ न बोलकर, रूखे-भाव से नकारात्मक उत्तर दिया यानी उसे गाँवों और नौलखे हारों की चाह भी नहीं।

"फिर,"—राजकुमारी की एक सखी ने कहा, "मन्त्रिवर की बात तुम्हें पसन्द आवेगी। उनका कहना है कि तुम्हारे लिए कुछ नियमित वेतन राजदरबार से नियुक्त कर दिया जाय, तुम्हें कन्दर्प-पुर मे एक मकान दिया जाय—सपरिवार रहने के लिए—और तुम राज्य के सबसे बड़े कलाकार पद की शोभा बढ़ाओ। यह तो, बड़ा बढ़िया प्रस्ताव है कलाधर। आनन्द से कन्दर्पपुर में रहो और जी में आये तो अपनी ही बनायी किसी सुन्दरी-मूर्त्ति से ब्याह भी कर लो !"

सखी की बातों पर राजकुमारी मुस्करा पड़ी। विवाह और सुन्दरी-मूर्त्ति की चर्चा पर कलाधर भी कुछ चमकता-सा मालूम पड़ा; पर, उसने इस प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया।

अन्त में राजकुमारी ने कहा, "अच्छी बात है, अपने लिए तुम्हीं उचित पुरस्कार सोचना। पिता जी को जो कुछ देना है उसे तो तुम पाओगे ही, साथ ही, मैं भी तुम्हें तुम जो माँगोगे वही पुरस्कार दूँगी। तुम्हारे-जैसे अलौकिक कलाकार को देने के लिए संसार की कोई भी चीज महँगी या अदेय नहीं।"

राजकुमारी की बातों से कलाधर की नीरस आँखे—न जाने क्यों—चमक उठीं।

● ●

सप्ताहभर से कन्दर्पपुराधीश कलाकुंज मे ठहरे हुए है और राजकुमारी के विवाह का आयोजन कर रहे है। और सब कारीगर अपनी-अपनी मजदूरी लेकर अपने-अपने देश चले गये केवल कलाधर ही अब तक राज-अतिथि है। आज रात्रि के आठ बजे, महाराज उसे भी न जाने क्या-क्या उपहार देकर विदा करने वाले है।

सुबह से ही कलाधर को इस बात की खबर दे दी गई थी कि उसे भी जो माँगना हो उसको महाराज से अलग और कुमारी से अलग मॉग ले—राजा और राजकुमारी दोनों ही की ऐसी आज्ञा है। आज आठ बजे वह महाराज और राजकुमारी के सम्मुख बारी बारी से उपस्थित किया जायगा।

मगर, सुबह से ही, आज न जाने क्यो कलाधर उदास है। उसने बहुत विचारा इस प्रश्न पर कि वह राजा और राजकुमारी से क्या मॉगे, पर उसे कोई संतोषजनक पुरस्कार सूझा ही नहीं। लेकिन वह क्या जाने, वह कुछ मॉगना जरूर चाहता था। क्या जाने वह क्या चीज़ थी जिसको वह चाहकर भी स्पष्ट कह नहीं सकता था, मॉग नहीं सकता था। दिन भर वह इसी उधेड़बुन में रहा कि क्या माँगे, क्या न माँगे। माँगे कि न मॉगे। कभी-कभी उसके चेहरे पर ऐसे भाव आते थे जिसका यह अर्थ होता था कि, उसकी इच्छित चीज़ उसे मिल ही नहीं सकती। उसने हज़ार अद्भुत कला-कमाल किया है तो क्या; उसको उसके इच्छानुसार पुरस्कार नहीं मिल सकता। मगर, फिर भी, उसने मन-ही-मन अपनी चीज़ माँगने का निश्चय किया।

जब वह, यथासमय, कलाकुंज मे पहुँचा; उस समय चारों ओर पुतलियो के हाथों और माथे के दीपक जल रहे थे। उस प्रकाश मे, काली मदिरा के उस तट से, अपनी रचना-चातुरी को देखकर कलाधर अपने पर आप ही मुग्ध हो गया!

"अहा !"—उसने विचारा—"यह है मेरी कला का पूर्ण विकास ! यह है मेरा अमर स्मृति-स्तम्भ ! यही मेरी कृति है जिसे देखकर आज से युगों बाद वाले लोग भी मुझे स्मरण करेंगे, मेरी प्रशंसा करेंगे, मुझे संसार के कलाकारो की मंडली की शोभा समझेंगे। अहा ! एक ज़माना आवेगा, जब न तो यह कन्दर्पपुर राज्य होगा और न यह राजा, और न मै, और न कलाकुंज की अधिष्ठात्री राजकुमारी—पर, मेरी यह कीर्त्ति-पताका उस समय भी इसी तरह गौरव से उड़ती रहेगी। अहा ! मुझ-सा बड़भागी और कौन होगा !"

वह उन्मत्त होकर अपनी बनायी हुई मूर्तियों को हृदय से लगाने और चूमने लगा ! इसी समय उसकी भीतर से पुकार हुई। क्षण भर बाद वह कलाकुंज के निज-निर्मित सर्वोत्कृष्ट भवन में अकेला खड़ा था और उसके सामने राजकुमारी, फूलों का शृंगार किये, रत्न-चौकी पर बैठी मंद-मंद मुस्करा रही थी। राजकुमारी का वह शृंगार और उसकी वह शोभा देखकर कलाधर का हृदय भावों से भर गया। वह उसके सामने करबद्ध खड़ा हो गया। जैसे देवी के सामने पुजारी।

"मुझसे जो कुछ तुम्हें माँगना हो, निःसंकोच भाव से माँगो कलाधर !"—राजपुत्री ने उदार-दृढ़ता से कहा, "इसके बाद पिता जी भी तुम्हें प्रसन्न करने के लिए आते ही होंगे। हम दोनों अमूल्य-से-अमूल्य चीज़ें देकर भी तुम्हें सन्तुष्ट करना चाहते हैं। माँगो !"

कुरूप कलाधर ने राजकुमारी की सौंदर्य-निधि पर एक दृष्टि डाली, ठंडी, मन्द साँस ली और फिर ज्यों-का-त्यों मौन खड़ा रहा। मानो उसकी आकांक्षा उसके गले मे ही अटककर रह गयी। वह अपनी मनोकामना उस देवी पर प्रकट न कर सका।

"चुप क्यों हो ? माँगो तुम्हें जिस चीज़ की इच्छा हो कलाधर !"

इस बार न जाने कहाँ की हिम्मत एकत्र कर वह घृणित कलाकार राजकुमारी की ओर बढ़ा, उसके सामने जाकर घुटने टेक दिये और चरणों पर अपना भद्दा माथा टेककर उसने काँपते कंठ से कहा—

"राजकुमारी, मैं आपसे दो चीजें माँगता हूँ। एक तो एक बार आप मुझे अपने सुन्दर चरण चूमकर धन्य हो लेने दें, और दूसरे, इसी कलाकुंज के एक कोने में मुझे भी अपना शेष जीवन व्यतीत करने दें। अब आपके बिना मेरी कला निर्जीव हो जायगी। यही मेरे हृदय की कामना और अभिलाषा है।"

राजकुमारी कुरूप कलाधर के विचित्र प्रस्ताव पर आश्चर्य-भाव से विचार कर ही रही थी कि उसने बढ़कर उसके चरणों को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया और उन दोनों पर दो चुम्बन अंकित कर दिये।

राजकुमारी सिर से पैर तक, उसके उस घृणित स्पर्श से, काँप उठी। वह उचककर चौकी से नीचे आ खड़ी हुई। वह कलाधर की कला को प्यार करती थी, उसके कुरूप मुख को नहीं। उसे कलाधर से ऐसी धृष्टता की आशा नहीं थी। उसने तीव्र-स्वर में उत्तर माँगा—

"कलाधर ! तुम नशे मे हो ?"

"अरे दुष्ट ठहर !"—इसी समय कलाधर के पीछे से महाराज की क्रोध-कंपित वाणी सुनायी पड़ी। महाराज की डाट ने कलाधर की नसों मे सन्नाटा डाल दिया। अब उसकी समझ मे यह बात आई, कि उसने भावावेश मे कैसा अनर्थ कर डाला है—कहाँ कन्दर्पपुर की राजकुमारी के चरण और कहाँ उसके असुन्दर ओठ !

क्षण भर बाद ही महाराज ने उसकी गर्दन को अपने कठोर पंजे मे जकड़ लिया। जैसे क्रुद्ध-हाथी ऊख को अपने कर मे दबा लेता है।

"अरे मूर्ख! तूने राजकुमारी का अपमान क्यों किया? बोल! बोल!!"

महाराज ने नौकरो को चाबुक लेकर आने को कहा। तुरन्त ही पाँच मज़बूत राज-सेवक कोड़े लेकर हाज़िर हुए। क्रुद्ध राजा की आज्ञा हुई—"मारो कोड़े इस नारकी को!"

कलाधर ने काँपते हुए देखा, उसकी ओर घृणा से देखकर राजकुमारी कलाकुंज के ज़नानख़ाने की ओर चली गयी। अब उसके होश ठिकाने आये, अब उसकी समझ मे परिस्थिति की गंभीरता आयी।

"दीनबन्धो!" वह गिड़गिड़ाया,—'मैंने राजकुमारी का अपमान नहीं किया है। मैं तो उन्हीं की इच्छा से अपनी अद्भुत-कला का पुरस्कार माँग रहा था। इस याचना में कालिमा की परछाईं भी नहीं थी धर्मावतार! कलाकार की इच्छाएँ भी, उसकी कला की तरह, असाधारण हुआ करती है।"

"मारो इसको!"—महाराज गरजे, "कलाकुंज के एक-एक कोने मे घुमाकर, इसकी एक-एक रचना के आगे इसे अपमानित करो। इसने राजकन्या का अपमान किया है। इसकी ऐसी हिम्मत! मारो! मारो!! मारो!!!"

कुरूप कलाधर को, भावुक कलाधर को, कला-प्रेमी कला-धर को यह कहाँ मालूम था कि, उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना पर ऐसा भयानक पुरस्कार दिया जायगा। उसने तो समझा था कि, उसकी अलौकिक कला के लिए मनुष्य उसे सब कुछ देगा और मुग्ध होकर देगा, प्रसन्नता से नाचकर देगा। अगर उसे अपने कलेजे के ख़ून को पानी करने के बदले मे इन घातक-कोड़ों की मार

मिलने की खबर होती, तो, वह आता ही क्यों यह अमर महा-काव्य रचने। अब उसकी समझ मे यह बात आ गयी कि सूखी लिट्टी खाकर, अपने सुख के लिए, बहन रामा के तट पर बालू के कलाकुंज बनाने और बिगाड़ने मे और बाजार मे आकर अमरता के मोह मे, इस दीर्घायु कलाकुंज-रूपी काव्य के लिखने मे कितना भयानक अन्तर है। पर आह! चिड़ियाँ चुग गई खेत!

अभागा और कुरूप कलाधर तब तक—'मेरी कला! मेरी कला!' चिल्लाता रहा जब तक कोड़ो की मार से राजभक्त राज-सेवको ने उसकी मुट्ठी भर की घृणित काया को निर्जीव नहीं कर डाला। इसके बाद मुग़लो की कला के आधार पर बने हुए उस लाल पत्थर के फाटक ने सदा की तरह खिलखिलाते हुए देखा। हाथ मे या माथे पर प्रकाश लिये हुए विविध-भावों वाली कलाधर की अनबोलती-बोलती बच्चियो ने देखा और देखा उस कलाकुंज ने कि उनका अलौकिक-निर्माता एक साथ ही काली और मनो-रमा मदिरा की गम्भीर धारा मे, उन राजसेवकों द्वारा, निर्दयता से फेंक दिया गया!

श्यामा मदिरा के तट पर वह अलौकिक 'कलाकुंज' आज भी उसी तरह उज्ज्वल और प्रसन्न है जैसा अब से दो सौ वर्ष पूर्व था। मगर, उसके निर्माण के बारे मे पूछे जाने पर लोग कन्दर्पपुर के राजा और राजकुमारी ही की चर्चा करते है। कहते हैं कि दयालु महाराज ने अपनी एक-मात्र पुत्री के लिए इसको बड़े खर्चे से बन-वाया था। कुरूप कलाधर और उसके घृणित प्राणो का किसी को भी पता नहीं।

२

आठवाँ स्वर

गवैया दीनू मियाँ की बात है। दीनू मियाँ गाने की कला में बे-जोड़ थे। बे-जोड़ यों नहीं कि वह दूसरे बैजू बावरे या तान-सेन थे, बल्कि यों कि जिस एक रागिनी को उन्होंने साधा, फिर उसमें उनका मुकाबला करने वाला उनके जीते-जी सारे देश में एक भी आदमी न था। उस रागिनी का नाम है 'पूरिया'।

दीनू मियाँ का बचपन और रियाज़ की उम्र कोल्हापुर राज्य में अपने गुरू चन्दन पण्डित की सेवा में बीती थी। चन्दन पण्डित ने कोल्हापुर में एक सवेरे किसी मुसलमान सच्चे भिखारी का हाथ पकड़कर चलने वाले एक ५–६ साल के लड़के की आवाज़ सुनी जो 'दे खुदा की राह पर' इन पाँच शब्दों को रागिनी 'असा-वरी' में गाने की धुन में—अज्ञान से आधा सुर फिसलकर शुद्ध जौनपुरी गा रहा था। इतना शुद्ध, ऐसा मीठा और मोहक कि चन्दन पण्डित का राग-प्रिय-हृदय प्रफुल्लित हो उठा। उन्होंने उसी वक़्त उस अंधे भिखारी और बालक दोनो को अपने यहाँ आश्रय दिया, खाने-पहनने का पूरा प्रबन्ध कर दिया तथा लड़के दीनू को गाने और सारंगी बजाने की शिक्षा देने लगे। चन्दन पण्डित जैसे हर एक राग-रागिनी के सिद्ध-गायक थे वैसे ही प्राय: प्रत्येक बाजे को भी वह कमाल के साथ बजा सकते थे।

"मगर अफसोस की बात है" अक्सर वह पछताते—"ब्राह्मण होकर और सब कुछ जानते हुए भी शुद्धता से संगीत-सेवा मैंने न की। पहले के संगीत-साधक सौ-मे-सौ साधु हुआ करते थे। वे विमल-वैराग्य के तारो पर सुन्दर-सुन्दर राग-रागिनियो को उतारा करते थे। मगर, आज के साधक सौ-मे-सौ दुराचारी, व्यभिचारी होते है। फल यह होता है कि कलावन्त का गला अगर सीधा हुआ तो मुँह टेढ़ा नजर आता है और आँख सीधी हुई तो दिल बाँका। और राग सही सधता ही नहीं।"

लेकिन यह सब सोचने पर भी चन्दन पण्डित अपनी दैहिक-दुर्बलताओं को दबा नहीं पाते थे। शादी शुदा दो स्त्रियाँ घर मे रखते हुए भी आप साल मे पॉच बार किसी-न-किसी 'अति चरल नार कर-कर सिंगार' वाली पर मर-मर जाया करते थे। फल यह होता कि पण्डितजी अपने शिष्यों को संगीत के साथ-साथ व्यभिचार भी सिखला देते थे, अनायास ही।

"यह विद्या"—चन्दन पण्डित से ही सुना—"गुरू-मार होती है—यह गाने-बजाने की विद्या। पंख आते ही, पट्ठे चेले, पर झाड़ कर, गुरू को दक्षिणा मे अँगूठा दिखा, अपनी राह लगते है। अक्सर चेले लोग लोभ या घमंड मे अपने गुरुओं से ही लड़-भिड़ जाते हैं। अक्सर भोले गुरू गुड़ ही रह जाते है और उन्हीं के गुण से चंट चेले चीनी हो चमकने लगते है। इस विद्या पर किसी देवता का कोप मालूम पड़ता है।"

दीनू मियॉ ने भी अपने उस्ताद के साथ कोई बात बाकी न रखी। कलियुगी चेलो के सारे लक्षण दिखलाये। यहाँ तक कि महाराज कोल्हापुर की नजरो से अपने गुरू को उन्होंने गिरा देना चाहा। बात यो हुई। अक्सर चन्दन पण्डित महाराज के मेहमानों को अपने कमाल से खुश किया करते थे। एक दिन महाराज ने किसी दूसरे राजा को चन्दन पण्डित के मुँह से 'पूरिया' रागिनी

सुनने का न्यौता दिया। खुद गाने के पहले, सयाना और चतुर हो जाने पर, हमेशा, पण्डित जी दीनू से कुछ गवाते और फिर 'उस पर' स्वयं गाते। मगर दीनू गाता कुछ और, और पण्डितजी और ही कुछ। उस दिन दीनू को उन्होने 'दरबारी' गाने को कहा था। लेकिन जब वह तंबूरा लेकर श्रीमंतो के सामने बैठा, तो उसने वही रागिनी शुरू कर दी जिसे चन्दन पण्डित गाने वाले थे। अभी वह 'ठाट' ही बाँध रहा था कि पण्डित ने इशारों से उसे रोकना चाहा, मगर वह कब मानने वाला था। डटकर गाया मियाँ दीनू ने 'पूरिया' और ऐसा गाया कि महाराज के मेहमान और महाराज सभी मस्त हो गये। चन्दन पण्डित से भी—हज़ार नाराज़ होते हुए भी—बिना 'वाह-वाह' किये न रहा गया। मगर फिर उन्होने उस दिन महाराज को सुनाया नही कुछ। बोले—"शागिर्द है तो क्या, तारीफ का सच्चा हकदार है।" आज दीनू मियाँ पर उसका उस्ताद भी गाने लायक नहीं। "वाह बेटे!"

और उसी दिन से गुरू चन्दन पण्डित के दिल मे शिष्य दीनू मियाँ के खिलाफ एक लकीर-सी पड़ गयी। बद्दुआ न देने पर भी सामना होने पर जैसे पण्डित के ओठो पर शाप नाचने लगते, आँखो मे अकृपा। बाहर उन्होने कुछ भी—एक बुरा विचार या शब्द तक—दीनू के लिए न निकाला। लेकिन इससे फायदे की जगह नुकसान ही ज्यादा हुआ। दीनू भी मन-ही-मन समझ गया कि अब उस्ताद उससे खुश नहीं। उसने सोचा—अब इस जगह रहना मुनासिब नही। जब भागना ही है तब गुरू जी की अच्छी हजामत करके क्यों न भागा जाय? उन दिनो चन्दन पण्डित की परम प्यारी दो चीज़े थी, एक तो किसी फ़कीर की दी हुई सारंगी जो चन्दन पण्डित के हाथ में बजती ही नहीं, बोलती और गाती भी थी। उसका स्वर बड़ा ही मादक था। दूसरी चीज़ थी एक नौजवान नौकरानी जिसे आधा कोल्हापुर 'चीज़' कहता था।

पण्डित जी उसे बहुत ही मानते थे। कहने को वह नौकरानी थी पर काम था उसका रानियो का। कभी चन्दन उससे तंबूरा छिड़वाते अथवा गाते वक़्त ताल दिलाते और कभी एकाध गिलास पानी या दूध मँगा लेते। मगर बिना उसके चन्दन पण्डित अभ्यास करने न बैठते। उसकी हाज़िरी मे पण्डित के रोम-रोम से राग-रागिनियाँ और स्वर बजने लगते। उस दासी को चन्दन ने चाँदी-सोना और मोतियो से मढ़ रखा था। उसे वह अपने घर की लक्ष्मी, शोभा आदि शुभ शब्दो से याद किया करते थे।

● ●

नवयुवती नौकरानी का नाम सुग्गी था जिसे चाँदी-सोने के साथ उड़ाकर दीनू मियाँ कोल्हापुर से सीधे बम्बई आया। मगर कुछ सुग्गी के नये-ताजे प्रेम और बहुत कुछ दुनियावी ज्ञान की कमी से दीनू मियाँ बम्बई मे कुछ कर न सका। जन्म का भिखारी अच्छा कलावन्त हो जाने पर भी अमीरो का सामना होने पर झेंपता-सा था। उन्हे अपने से बहुत ऊँचा समझता था। दीनू मियाँ अपनी अमृत-कला से अमीरो के पथरीले महलो को ज्यादा महत्त्व देता था। उनमे प्रवेश करते हुए उसके रोंगटे खड़े हो जाते—जैसे कोई पापी थर्राकर मन्दिर की सीढ़ियो ही से वापिस फिरे वैसे ही बार-बार बड़े-बड़ो के मुहल्ले की तरफ वह जाता, मगर, बिना कुछ बनाये ही लौट आता। सोचने लगता—"यह सब उस्ताद से दगा करने का नतीजा तो नही है? अहँ! नहीं! नहीं मगर क्यों? जिसने मुझे सड़क के भिखारी से कलावन्तों का राजा बनाया उसके साथ मैंने कितना कमीना सलूक किया! उफ!"

सुग्गी अपने साथ ज्यादा-से-ज्यादा ५-६ हजार की सोना-चाँदी लायी थी। वह सब बेच खाने मे दीनू मियाँ को अधिक वक़्त नहीं लगा। इधर इसी बीच सुग्गी के माँ बनने के आसार भी नज़र आने लगे। ऐसे मौक़ों पर मर्द से, हमेशा, औरत अधिक

सावधान रहती है। एक दिन उसने दीनू से कहा—"हमारा निकाह भी नहीं हुआ और रुपये आधे से ज्यादा ख़र्च हो गये। मेरी हालत ऐसी है। आख़िर घर बनाने का ख्याल तुम कब करोगे? इस बम्बई का मुँह फूँको, चलो किसी छोटे-से शहर मे कोई छोटा-सा रोज़गार कर भले लोगो की तरह वहीं हम भी बस जायँ। मुझे नागपुर पसन्द है।"

मगर, दीनू मियाँ को उसकी बाते मंज़ूर न हुईं बल्कि अब वह धीरे-धीरे सुग्गी से खिंचने-सा लगा। अभी उसके पेट मे तीन ही महीने का बच्चा था कि वह वेश्याओ के मुहल्ले की सैर करने लगा। उसको अक्सर सारी रात अकेली ही छोड़ वह कहीं और रहने लगा। अक्सर उसी के आगे अब वह यह भी कहने लगा—'कलावन्तों का एक को गले मढ़ना भूल है। बुलबुल क्या एक ही गुल के सामने गाता है? भौंरे क्या एक ही फूल का रस लेते हैं? रसियो की राह ही दूसरी होती है।"

अब सुग्गी रोती और सर पीटती कि किस देवी से वह कैसी चुड़ैल बन गयी! यह उसने किया क्या? चन्दन ऐसे सुगन्धित-हृदय पण्डित को पाँवों से रगड़कर किस नापाक मल-मूत्र को उसने अपने माथे पर चढ़ा लिया! वह सोचती—"क्या चन्दन पण्डित के स्नेह की हत्या का मुझे प्रायश्चित करना पड़ेगा?"

आख़िर एक दिन मामला तूल पकड़ गया। उस दिन भी चार ही बजे जब दीनू मियाँ अपनी नयी माशूका के यहाँ जाने को सज-बजकर निकला तो सुग्गी ने उसकी शेरवानी का पल्ला पकड़ लिया, "बस, बहुत हो चुका। महीनों से मुझे किस क़ुसूर पर रुला रहे हो? आज यहीं रहो। अकेले मै डरती हूँ।"

"यह सब तिरिया चरित्तर के लच्छन हैं"—बनाया दीनू ने, "आख़िर मुझे भी अपनी इज्ज़त की फ़िक्र है। कुछ कमाना-धमाना न होगा, तो न तुम होगी, और न तुम्हारा यह बच्चा होगा।"

"मगर, आज तक कितनी कमाई की है यहाँ पर सरकार ने ?"—ज़रा तीखी होकर सुग्गी बोली, "जैसे अब तक चला है, आगे भी चलेगा।"

सुग्गी की बात दीनू मियाँ को लग गयी। उसने सोचा—"साली ताना मारती है, अपने गहनों का।" शायद वह ऐसे ही मौके की तलाश मे था। पर उसके बोलने के पहले ही एक औरत खुले कमरे मे तेज़ी से घुस आयी। उसका मुँह पाउडर से पुता, ओठ रँगे, बाल बिखरे थे। वह शायद नशे मे थी। आते ही उसने दीनू मियाँ को आड़े हाथो लिया, "वाह हज़रत, ऐसी वादा-खिलाफी ? इतनी देर !"

"यह आने दे तब तो आऊँ !"—दीनू मियाँ ने सुग्गी की ओर इशारा किया जिसे घूरकर पाउडर वाली जल उठी। बुझा हुआ तीर उसने मारा, "इस चाल मे आते तो मुझे भी शर्म मालूम पड़ी। मेरे घर मे बहुत जगह है। तुम दोनों वहीं क्यो नहीं चलकर ठहरते ?"

"मुझे तो कोई एतराज़ नही, हाँ इन्हें ले चलिये।"

"मै किसी के घर नहीं जाती।"—सुग्गी ने अन्दर-ही-अन्दर कुढ़कर कहा, "यह चाल ही अपना महल है।"

"किसी के घर जाती नहीं बीबी ?"—हाथ चमकाकर अब पाउडर वाली बोली, "और पट्ठो के साथ कोल्हापुर से बम्बई चली आती है ! ऐसी सतवंती का मुँह जले ! सारे शहर की गंदगी पेट मे छिपाकर नाक ऊँची करती है।" फिर उसने स्तब्ध सुग्गी को छोड़ दीनू मियाँ की तरफ देखा, "जो औरत बिना शादी के पेट पाल सकती है, वक़्त आने पर वह कुछ भी कर सकती है। समझे भोले मियाँ जी ! लाहौल भेजो इस आफत की परकाला पर। आओ, चलें !"

● ●

डाक्टर जगजीवन देव उन दिनो नागपुर शहर और आस-पास के देहातो मे बहुत मशहूर थे। बेशक उन्होंने विलायत मे शिक्षा नहीं पायी थी लेकिन अच्छे-अच्छे विलायती सर्जन चीर-फाड़ के काम मे उनकी बराबरी नहीं कर सकते थे। इसका कारण यह था कि डाक्टर साहब ने निहायत ग़रीबी मे डाक्टरी विद्या की शिक्षा पायी थी। कई साल आधा पेट खा और म्युनिसिपैलिटी की लालटेनो की रोशनी से पढ़कर उन्होने डाक्टरी पास की थी। और शुरू से ही जगजीवन देव के मन मे 'कुछ न कुछ करने का' पक्का इरादा था। उन्होंने सुना था, उनके दादा अपने वक्तो मे अच्छे रईसो मे गिने जाते थे जो अपनी उदारता या शाह-ख़र्ची से साफ हो गये थे। जगजीवन एक बार अपने दादा वाली स्थिति परिवार मे पुन लाना चाहते थे। इसी इरादे से तपस्वियो की तरह रियाज़ कर उन्होने डाक्टरी और सर्जनी सीखी थी। धुन के पक्के होने के कारण उन्होने एक बार जो सीखा, पत्थर की लकीर की तरह ज़ेहन मे नक़्श कर लिया। पहले आप साधारण असिस्टेंट सर्जन के पद पर एक इलाके मे नियुक्त हुए जहॉ अस्पताल के नाम पर एक छप्परदार घर और दवा के नाम पर सिनकोना और कुनेन के अलावा और कुछ भी नहीं था। और उस इलाके का पहला ही केस उन्होंने इस योग्यता से सॅभाला कि उनका सुयश इलाके भर मे व्याप्त हो गया। बात यों हुई। जगल के एक रखवाले को किसी चीते ने बुरी तरह घायल किया था। ख़ासकर पॉव पर उसके नाख़ूनो के घाव गहरे और ज़हरीले थे। जब वह डाक्टर जगजीवन देव के पास लाया गया तब एक बार तो वह घबराये-से हो गये; क्योकि अस्पताल मे चीरफाड़ का एक भी औज़ार न था और दूसरा अच्छा अस्पताल नागपुर शहर मे था जो उस जगह से पचास मील दूर था। वहॉ तक जाते-जाते घायल नाख़ूनों के ज़हर से ज़रूर मर जाता और काटनी थी पॉव की

हड्डी–आधी टाँग। लाचार दरियाफ्त किया डाक्टर ने कि जंगलियों के पास तेज छुरी-छुरा या आरी है और बड़ी तलाश के बाद लकड़ी काटने की एक छोटी आरी तथा कोई कुंद छुरा मिला। उन्ही औज़ारो को, भगवान् का नाम लेकर—घिस-घिसकर तेज कर, पानी मे खौलाकर जगजीवन देव ने किसी तरह कामचलाऊ बनाया। अब लकड़ी काटने की आरी से उन्होने आधी टाँग उस घायल की काट डाली और महज 'टिंचर आयोडीन' मे रुई भिगोकर उस पर रख घायल को बेखौफ नागपुर भेज दिया। वहाँ वह जल्द ही चंगा हो गया।

इसके बाद डाक्टर जगजीवन देव के अस्पताल नामक उस झोंपड़े पर मरीज़ो की भीड़-सी रहने लगी। इसी के बाद उनके बड़े अफसरो की उन पर खास निगाह होने लगी। डाक्टर उन्नति की सीढ़ियो पर धड़ाधड़ चढ़ने और बढ़ने लगे। चन्द बरसो की सर्विस मे ही वह 'असिस्टेंट' से 'हेड' हो गये। सारे डिवीज़न में कोई भी 'ऑपरेशन' जगजीवन की सलाह या हाथ बिना हरगिज़ न होता। लोग कहने लगे, बेशक डाक्टर जगजीवन जगत के जीवन है, चलते-फिरते देव। और अब लोग झट से डाक्टर के नाम के साथ उनके दादा की याद भी करने लगे—"फला का पोता तो कुलभूषण है। उनसे भी अधिक तेजस्वी!" जानकारो का दावा है कि डाक्टर जगजीवन देव दया और उदारता की मूर्त्ति थे। वह किसी से कुछ भी फीस आदि न माँगते, जो मिलता उसी पर धन्यवाद देते। विधवा, गरीब और ब्राह्मण से, लाख देने पर भी, कुछ भी नहीं लेते थे। तिस पर डाक्टर थे पूरे पीयूषपाणि—जिसका हाथ पकड़ा उसको चंगा ही कर दिया।

● ●

'इस्लामियाँ होटल' के सामने की बिल्डिंग से किसी मरीज़ को देखकर डाक्टर जगजीवन देव बाहर आये ही थे कि उन्हे

होटल में हो-हल्ला होता मालूम पड़ा। जैसे कुछ लोग झगड़ते हों - मार-पीट पर आमादा। अपनी 'फोर्ड' के ड्राइवर को उन्होंने होटल की तरफ़ चलने को कहा। वहाँ पहुँचकर डाक्टर ने देखा, एक सड़े-गले-तन, दुबले-पतले मुर्दे-से आदमी की पचासों मुसलमान लानत-मलामत कर रहे हैं। मगर डाक्टर को देखते ही वे चुप हो रहे, उस आदमी से अलग भी हो गये। अब जरा हवा पाकर वह मुर्दा उड़ भागा। मगर डाक्टर ने उसे होटल के बाहर रोक लिया—

"क्या मामला है ?"

"साले को गरमी हुई है हुज़ूर !"—होटल वाले ने कहा, "और बदमाश भीतर घुस आया चाय पीने को !"

"हुज़ूर !"—अब वह मुर्दा भी रो पड़ा, "किसी होटल मे मै घुसने नही पाता, खुद पकाने-बनाने के क़ाबिल नहीं। इधर रोग, उधर फाके। मेरे अल्लाह ! मै मर क्यो नहीं जाता ?"

"अबे साले !"—होटल वाला पुन. बिगड़ा, "जिस जगह से यह बला पाल लाया है वहाँ क्या डाक्टर साहब से पूछकर गया था ? तुझ-जैसे मरे, तो ज़मीन का भार हल्का हो।"

"ऐसा नहीं बड़े मियाँ ! माफ़ करो भाई !"—तरस खाकर डाक्टर ने होटल वाले से मिन्नत की, "जले को और न जलाओ ! किसी के कटे पर नमक तेज़ दर्द पैदा करता है।" अब उस मुर्दे से डाक्टर ने सप्रेम पूछा, "तुम्हारा नाम ?"

"दीनू ....."

"अच्छा दीनू मियाँ, मेरी गाड़ी मे बैठ तो जाओ।"

मगर दीनू मियाँ की औक़ात इतनी कहाँ, कि डाक्टर की मोटर में बैठता; आख़िर मसीहा ने ज़बरदस्ती मरीज़ को अपने पास बैठाया।

"यह बग़ल में क्या है दीनू मियाँ ?"

"सारंगी, हुजूर !"—चलती मोटर मे दीनू ने जवाब दिया।

"तो तुम्हे सारंगी बजाना भी आता है ? खूब !"

"हुजूर !—ख़ादिम गाता भी है किसी कदर।" भरे-गले से दीनू मियाँ ने जवाब दिया, "मगर अपनी बुरी करनी से मेरे सारे गुनो पर हरताल फिर गयी है।"

"अजी !"—करुण-शब्दो में डाक्टर ने जवाब दिया, "यह दुनिया गुनाहों से भरी हुई है। इस काजल की कोठरी में बे-धब्बा कौन रह सकता है ? इस रोग को गुनाह न समझो। इसे तो, भगवान् की दया से, मैं चुटकियों में अच्छा कर दूँगा।"

"इसी रोग की बात नहीं हुजूर !"—दीनू के दिल से पश्चात्ताप की लपटे निकलीं, "मैंने अपने ख़ुदा—अपने उस्ताद को धोखा दिया है। यह सब उसी की सज़ा है ग़रीबपरवर ! चन्दन पण्डित का नाम सुना है आपने ?"—उस्ताद के नाम की इज्ज़त के लिए कान छूते हुए दीनू ने पूछा।

"हाँ-हाँ"—डाक्टर ने जवाब दिया, "वह तो संगीत-कला के समुद्र थे समुद्र ! तुम उन्हीं के मुरीद हो ?"

"बेईमान शागिर्द हूँ मैं।"—दीनू ने बतलाया, "उस्ताद ने मुझे ज़र्रा से आसमान बनाया, मैंने उस आसमान पर थूका—आह ! —मेरा मुँह देखिये !"

मारे दुःख के दीनू फूट फूटकर रोने लगा, सारंगी और सुग्गी की कहानी सुनाकर बोला, "गुरू ही से नहीं, बेचारी अबला नारी से भी मैंने बुरा सलूक किया है। उसका सब कुछ लूट, हमल की हालत मे, उसे बम्बई-ऐसे शहर में छोड़, उस नागिनी के साथ चला गया जिसका ज़हर आज गुनाहों की तरह मेरे जिस्म से फूट-फूटकर निकल रहा है। असिल में होटल वालो ने मेरे साथ ठीक बर्ताव किया, बुरे रोग की तरह मैं किसी भी घर में रहने लायक नहीं। आप मझे कहाँ लिये जा

रहे है ?"

"अपने घर। मै डाक्टर हूँ न !"

बंगले पर आते ही पहले डाक्टर ने मरीज़ को गर्म और दवा के पानी से नहलाया और फिर अच्छी-से अच्छी, महँगी-से-महँगी दवाएँ और इंजेक्शन उन्होने दीनू मियाँ की देह पर लगाये। उस अध सड़े रोगी की सेवा डाक्टर ने कई घंटे ऐसी की जैसे कोई गौ-भक्त गौ की करे। मरहम-पट्टी के सिलसिले में उन्होंने मरीज़ को इतना आराम दिया कि देखते-ही-देखते उसमें नव-जीवन लहराने लगा। वह गुनगुनाने—गाने को—अकुलाने लगा।

"धीरे-धीरे गाओ, नसो पर ज़्यादा ज़ोर न पड़े।"—डाक्टर ने सलाह दी, "कोई भजन याद है दीनू मियाँ ?"

"बीसो !"—उत्सुक, प्रसन्न दीनू ने कहा, "मेरे गुरू चन्दन पण्डित .." दीनू ने पुनः कान छुए, वह परम मधुर, करुण स्वर से गाने लगा—"औगुन चित न धरो, हमारे प्रभु ! औगुन चित न..."

पश्चात्ताप की ऐसी करुण-धारा लहरा उठी दीनू मियाँ के कण्ठ से कि डाक्टर जगजीवन देव उससे सराबोर हो उठे। मरीज़ और डाक्टर दोनों ही के हृदय के तार स्वर्गीय झंकार से झनझना उठे। थोड़ी देर तक दोनों ही इस लोक मे नहीं-से रहे !

● ●

जगजीवन देव की मसीहाई से दीनू मियाँ उस भयानक रोग से दो ही हफ्तों में मुक्त हो गया। साथ ही इसी बीच में डाक्टर के दिल में दीनू के गुणों ने भी जगह पा ली। चगा हो जाने पर भी उन्होंने कलावन्त को कहीं जाने न दिया। अपने ही बंगले मे एक क्वार्टर दे दिया रहने के लिए। अब अक्सर फ़ुर्सत पाने पर

डाक्टर दीनू मियाँ से गाना या सारंगी सुना करते। सारंगी तो डाक्टर सीखना भी चाहते थे, पर दस ही बारह 'गज़' फेरकर उन्होंने उस विद्या को अपने बूते के बाहर की वस्तु मान ली।

एक दिन की बात है, रात के कोई दस बजे दीनू मियाँ डाक्टर को सारगी सुना रहा था कि नौकर ने एक देहाती को लाकर डाक्टर के सामने खड़ा किया। "सरकार!" देहाती ने अर्ज़ किया, "मै घासीपुर गाँव से आ रहा हूँ। एक औरत, बच्चा न पैदा होने से, मारे तकलीफ के तड़प-तड़पकर मर रही है।"

"मैं अभी चला। अरे ओ रामदीन!"—डाक्टर ने ड्राइवर को पुकारा—"जल्द गाड़ी लाओ, घासीपुर चलना है। दवाओ और औज़ारों की पेटियाँ भी रख लेना।" फिर उन्होने दीनू मियाँ से कहा, "चलो, तुम भी रहोगे तो काम के बाद सवेरे भैरवी सुनने को मिलेगी।'

"हाँ-हाँ हुज़ूर!"—दीनू ने कहा, "बन्दा बिलकुल तैयार है। चलिये।"

मगर मोटर जब डाक्टर के बँगले से कोई दो मील दूर निकल गयी तब दीनू मियाँ को अपनी सारंगी की याद आई।

"हुज़ूर मुझे उतार दीजिये।"—उसने कहा, "बिना सारंगी के मैं रह नही सकता। उस साज़ को न तो कभी मेरे उस्ताद छोड़ते थे और न मैं ही। ऐसा बाजा सारे मुल्क मे नहीं मिलेगा।"

ख़ैर, मोटर फिराकर डाक्टर ने दीनू को सारंगी भी साथ लेने दी। इस तरह घासीपुर गाँव पहुँचते-पहुँचते रात के साढ़े बारह बज गये। दीनू मियाँ तो ड्राइवर की बग़ल में सो भी गया। और सुरीली सारंगी को बग़ल मे दबाये बे-सुरी नाक बजाने लगा। निश्चित स्थान पर पहुँचकर डाक्टर ने, दयावश,

दीनू को मोटर ही में सोने दिया जगाया नहीं, और आप रोगी को देखने गये। वह प्रसव-पीड़ा से, एक कच्ची कोठरी में, खाट पर मछली की तरह तड़प रही थी।

"यह तुम्हारी कौन है ?"—देहाती से डाक्टर ने पूछा।

"मेरी कोई भी नहीं सरकार, परदेसिन भिखारिन है—लेकिन ऐसी तकलीफ़ में है कि देखा नहीं गया मुझ से। मैं सरकार की मदद माँगने शहर को दौड़ा गया।"—देहाती ने गम्भीर स्वर मे जवाब दिया।

"तुम्हारा क्या नाम है बेटी ?"—डाक्टर ने पीड़ित स्त्री से पूछा।

"सुग्गी.. !"—तड़पकर वह बोली, "मुझे बेटी कहकर अपनी ज़ुबान गन्दी न कीजिये। पापिनी हूँ, विश्वास-घातिनी...।"

"सुग्गी !"—डाक्टर को दीनू मियाँ ने यही नाम तो बतलाया था। वह सोचने लगे—"क्या यह वही औरत है ?"

"तुम्हारा मर्द कहाँ है बेटी ?"—डाक्टर ने मतलब से पूछा, यह भूलकर कि रोगी को दवा पहले ज़रूरी थी। इस बार जब सुग्गी मारे कष्ट के कोई उत्तर न दे सकी, तड़पने लगी, तब डाक्टर को अपनी भूल समझ पड़ी। तुरन्त ही उन्होंने दवा और औज़ारों की पेटी सँभाली। फिर मरीज़ की जाँच की।

"मामला ख़तरनाक है।"—उन्होंने देहाती से कहा, "पेट को चीरकर बच्चा बाहर करना होगा।"

ड्राइवर ने तुरन्त ही 'स्टोव' तैयार किया जिसमें चीर-फाड़ के शस्त्र गर्म किये जाने लगे।

"लेकिन हुज़ूर !"—ड्राइवर ने बतलाया, "ज़ख्म सीने की रेशमी डोरी तो है ही नहीं।"

"क्या ?...?" डबल हैरत से हैरान डाक्टर ने पूछा, "डोरी नहीं है ? तब तो गज़ब हो गया। नागपुर से डोरी लाते-लाते तो

मुर्गी उड़ जायगी। घर मे पेटी देखकर, चीजों को सँभालकर नहीं रखा, उसी का यह फल है। किसी के आसरे काम छोड़ने का ऐसा ही नतीजा होता है। ग़लती मेरी है, मगर करूँ तो अब क्या करूँ ?"

हतबुद्धि से जगजीवन देव कोई पाँच मिनिट तक सोचते रहे। फिर भी वह कुछ सोच न सके।

"आज मेरी असावधानी से दो जाने जायेंगी।"—माथा पीटकर डाक्टर ने लाचारी ज़ाहिर की। इसी बीच जैसे उन्हें कुछ याद आई—याद आई दीनू मियाँ की वह अद्भुत सारंगी, उसके तांत के तार।

"देखो,"—उन्होने ड्राइवर से कहा, "धीरे से गवैया की बग़ल से सारंगी उड़ा लाओ। उसे ज़रा भी आहट न हो, नहीं तो औरत-बच्चे के मर जाने पर भी वह सारंगी नहीं देगा।" और फिर कुछ सोचकर ड्राइवर को रोक, डाक्टर खुद मोटर की तरफ़ लपके। अभी दीनू मियाँ सो ही रहा था। धीरे से डाक्टर ने उसकी बग़ल से सारंगी सरका लेनी चाही। पर, लो ! दीनू ने हिलकर आँखें खोल दीं।

"कौन ? कौन सारंगी खिसका रहा है ?"

"मैं हूँ, दीनू मियाँ ! तुम सोओ, बाजा ज़रा मुझे दे दो।"

"इस ज़िन्दगी मे डाक्टर से सारंगी न बजेगी, कई बार तो आपने गज़ पकड़कर देख लिया—जाने दीजिये।"

"नहीं, दीनू मियाँ, आज डाक्टर तुम्हारी सारंगी इतनी सुरीली बजावेगा जितनी तुमने कभी सुनी न होगी। तुम सोओ।"

"आप मालिक है, नही तो, उस्ताद का साज़ मैं किसी को छूने भी नहीं देता। ले जाइये।"—दीनू मियाँ ने निद्रित-मुँह ढकते-ढकते कहा।

इसके बाद डेढ़ बजे रात से पाँच बजे सुबह तक डाक्टर सुग्गी की सेवामे लगे रहे। सारंगी की तांत को किस तरह स्वच्छ कर उन्होंने अपने काम लायक बनाया यह वही जानते होंगे। मगर पाँच बजे सवेरे तक सारा मैदान सर कर ज़च्चा और बच्चा दोनों ही भगवान की दया और डाक्टर की सफाई से बच गये। सुग्गी के लड़का हुआ निहायत सुन्दर। और सुबह रियाज़ के लिए सारंगी उठाने पर दीनू ने तांतो को नदारद पाया !

"हैं !"—मुँह बिगाड़कर उन्होंने पूछा डाक्टर से—"इसकी सारी तांत क्या हो गयीं ?"

"बज रही है। मैं बजा रहा हूँ।"—गंभीरता से जगजीवन-देव ने सुनाया, "आज आधी रात ही से मेरी सारंगी बोल-बज रही है।"

"हुज़ूर मज़ाक़ करते हैं।—बतलाइये तांत हो क्या गयीं ?"

"आओ मेरे साथ और सुनो तांतों का स्वर। मैंने कहा न तुमने ज़िन्दगी भर सारंगी बजाई है—आज मैं बजा रहा हूँ। आज मेरा साज़ बोल रहा है—आओ तो !"

झोपड़ी के अन्दर एक मामूली-सी चारपाई पर दीनू मियाँ ने सुग्गी को चित पड़ी देखा और देखा उसके पास ही एक खटोले पर परम सुन्दर बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रोता।

"अरे !"—दीनू के मुँह से सहसा निकल गया, "यह तो सुग्गी है। बच्चे का मुँह तो ठीक उस्ताद चन्दन पण्डित की तरह है !"

उसने उस्ताद के आदर के लिए बांये कान को छुआ लेकिन दूसरे ही क्षण ग्लानि और शरम से भरकर वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

"भागते कहाँ हैं ?"—बाधा दी डाक्टर जगजीवन देव ने, "ज़रा ग़ौर से सुनिए तो ! आप ही की तांत बोल रही है। आप ही

की सारंगी बज रही है। हाँ, तरकीब—खुदा के फज्ल से—बंदे की है। यह है आठवाँ स्वर उस्ताद! आपके सरगमों में तो सात ही होते हैं न!

३

पोली इमारत

आप सोचते होंगे कि इमारत मे स्वर्ग रहता है, अमीरी में बड़े सुख है। आप ही की तरह उस 'सर्वेगुणाः काञ्चन माश्रयन्तु' वाले निरीक्षक ने भी सोचा होगा। पर मेरा अनुभव इसके बिलकुल विपरीत है और जहाँ तक मैने देखा, मेरी ही कसौटी पर ज्यादातर अमीर या श्रीमंत या बड़े आदमी सही उतरते है। याने सुख से धन का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। आप मेरा ही केस लें। मै प्रसिद्ध करोड़पती। करोड़पती वह जो करोड़ों का धन्धा करता हो, याने कई करोड़ का आसामी हो। 'नेमीराम प्रेमीराम' फ़र्म का नाम आपने ज़रूर सुना होगा। मैं उसी का वर्तमान स्वामी हूॅ; पहले मेरे पिता थे श्री नेमीराम जी। मेरा नाम आप समझ ही गये होगे, प्रेमीराम। और भी सही ढंग से मेरा नाम रायबहादुर, धर्मधुरन्धर, दानदिवाकर श्री प्रेमीराम जी है।

जब मेरे लिए मुट्ठीभर कौड़ियॉ मोहाल थीं, तब मैं भी सोचता था कि सोने मे ही सुख का सुगन्ध होगा, 'सर्वेगुणाः काञ्चन माश्रयन्तुः' वाले पण्डित की तरह। और मुझे अब लगता है कि उक्त सूत्र का वक्ता ज़रूर ही दरिद्र रहा होगा। दरिद्र ही, धन-अनुभव-हीन ही ऐसा सोच-समझ और ललकारकर कह सकता है।

इस वक़्त मेरे पास तीन तो काटन-मिले है, तेरह फैक्टरियाँ,

और पचासो दूसरे धन्धे। केवल एक नगर मे ही नही, हिन्दुस्तान के सभी बड़े-बड़े शहरो मे। रुपये—करोड़ो—बरसाती पानी की तरह मेरे हाथ पर से बहते हुए विविध बाज़ारो मे जाते हैं। मै जो चीज़ चाहूॅ, चाहते ही वही मुट्ठी मे आ जाती है, फिर भी, मुझे सुख नहीं।

धन से प्राप्य सुख—सुरा-सुन्दरी-भोग आदि—धन हाथ में आते ही मैने भर-भर पेट लूटे। कल तक विलासियो की लिस्ट मे मेरा नाम सबके ऊपर था। सो, आज तक किसी को विश्वास नही होता कि मै कभी विलास-विरहित हो सकता हूॅ। इधर अपनी हालत यह कि पिछले ढाई वर्षों से एक बूॅद शराब नहीं छू पाया हूॅ। दस साल जमकर जो भोग किये, तो सारा तन पोपला पड़ गया, जिससे राजरोग अपने दल बल के साथ मेरे शरीर मे आ विराजे। 'शरीर व्याधि मन्दिरम्' देखना हो, तो आप कभी आकर मुझे देख जायं। आपके आतिथ्य और भोजनादि की व्यवस्था मेरे माथे।

मेरे पास करोड़ो रुपये, जिन से मै जो चाहूँ पा सकता हूँ। पर जो चाहूॅ, उसे पचा नही सकता। पिऊँ तो पेशाब से खून जाने लगता है, खाऊॅ तो दो ग्रास हज़म नही हो सकते, फिर स्त्री-सुख की तो चर्चा ही अलग है। ग़म के बाद खाने को मिलता है परवल या लौकी का जूस और दो फुलके। बस! ज़रा-सा घी खा लूॅ, तो दस्त आने लगे। दूध पीलूॅ, तो कालरा हो जाय। घर मे सबकी खुराक अच्छी, मेरी पत्नी की तो डबल। मगर मेरी क़िस्मत मे वे ही दो फुलके, हल्के। और मै करोड़ो का वारा-न्यारा करने वाला!

जवानी के चन्द बरस जो वेश्याएँ संग रही, तो अब तो जीवन के शेष दिन डाक्टरो के सिवा अन्य किसी के साथ कटते नज़र नहीं आते। तिजोरी मे करोड़ रुपये हो, पर जान डाक्टर की मुट्ठी

में है। मारे इन्जैक्शनों के भुजाएँ छलनी बन गयीं और अब नितम्बो मे सूजे चलाये जा रहे है। मैं बड़े दुख मे हूँ और मेरी ही कमाई या भाग्य पर रहने वाले लोग अमन-चैन मे हैं।

जवानी मे पर-स्त्री-लम्पट होने से घर वाली पर भी मेरा कोई रौब नही। वह भी अमीर घर की लड़की अड़ीली। मैंने उसकी परवाह छोड़ी, तो उसने मेरी परवाह छोड़ दी। जिस डाक्टर से मैं मौत से वचने की दवाएँ लेता उसी से वह भूख बढ़ाने की दवाएँ लेती। देवी जी स्वस्थ जैसे हरियाना-नस्ल की गाय। मैं अस्वस्थ जैसे गर्मी के दिनो मे सूखे-पहाड़ी इलाके का डांगर बैल।

कमज़ोर बैल पर मुमकिन है कि किसी गौ-माता को तरस आ जाय, पर क्या मजाल कि मेरी हालत पर मेरी अमीर-पुत्री पत्नी को तरस आये।

सारा वातावरण स्वार्थ-मय और सही सहानुभूति-शून्य। मैं शान्ति चाहूँ और मेरी पत्नी रेडियो पर चुन-चुनकर वे ही प्रोग्राम सुनने वाली जिनमे हो-हल्ला और शोर-शराबा हो। मैं कहूँ कि मैं बीमार हूँ, तो उसका सवाल या जवाब हाज़िर कि आप क्या चाहते है कि मनहूस बनी रहकर मैं भी बीमार पड़ जाऊँ ?

मैं ६ बजे उठूँ, देवी जी नौ बजे और उनके उठने के पहले झाड़ू, चाय, नाश्ता कुछ भी संभव नहीं। डाक्टरों ने मुझे साढ़े दस बजे तक दिन और आठ बजे रात तक खाने या ब्यालू करने की हिदायत की है, पर देवी जी साढ़े ग्यारह बजे नहाती है। वह नहाकर जब ठाकुर जी को भोग लगा ले, तब मुझे दो हल्के फुल्के नसीब हों।

पहले सुख बुलाने के लिए ऐय्याशी की, फिर दुख भुलाने के लिए और अब किसी बहाने कोई भी शारीरिक सुख भोगने के मैं नाकाबिल हो गया हूँ। एक शायर ने अपनी कमजोरी में गाया—"गर हाथ को जुम्बिश नहीं, आँखो मे तो दम है—" पर मेरे

जाने, उसकी आँखों मे नहीं, दिल मे दम रहा होगा। यहाँ दिल ही बेदम हो गया है। और इस उम्र मे, जब कि मैं अभी महज़ ३५ साल ३ महीने का हूँ। और इस अम्र मे जब कि असाधारण सम्पति-श्री मेरे चरणो पर लोटती है।

यहाँ की सम्पति मे सुख नहीं है। सुख कहाँ है मेरी समझ में ही नहीं आता। महलनुमां मकान जेलखाना मालूम पड़ता है, डाक्टर जेलर जान पड़ते है। ऐय्याशी के मुँह सौ बार देखे तो डाक्टरों के प्रिय जल्लादी चेहरे हज़ार बार देखने को मिल रहे है। और जब अपनी पत्नी ही इज्ज़त और प्यार न कर अपमान और तिरस्कार करती है तब दूसरे से कोई क्या उम्मीद करे। प्रेमी सभी बनते है, पर मैं जानता हूँ, मात्र मुखौटे लगाने वाले, जिसके अन्दर झाँकिये वही मतलब, स्वार्थ, खुदग़र्ज़ी, माया मात्र।

उस दिन की बात। चार ही बजे रात नींद खुल गयी। सवेरे कोई बड़ा त्यौहार था। मैं बिलकुल चगा नही था। अभी वैद्यराज जी की दवाएँ चल ही रही थीं। फिर भी हालत काफी प्रसन्न थी। खासकर उस वक़्त। मुमकिन है प्रभात के साथ उदय होने वाले त्यौहार की कल्पना-मात्र से वह प्रसन्नता पुष्ट हो उठी हो; पर उस समय मैं बहुत प्रसन्न था।

सोचा जल्द ही कोई 'कॉफ़ी' एक प्याली पिला देता तो सूर्योदय के पहले ही ज़रा घूमने को निकल जाता। मैंने नौकर को बुलाने के लिए पलॅग मे 'फिटित' बिजली की घटी बजाई। वह आया। पर ज़रा देर मे आया। क्यों?

कई बार पूछने पर उसने बतलाया कि घंटी की आवाज़ सुनते ही देवी जी की नींद भंग हो गयी और बहुत ही नाराज़ होकर वह गालियाँ देने लगीं। उन्होंने कहा—

"कौन मौत—पड़ा सवेरे-सवेरे मसान जा रहा है?"

और त्यौहारोदय के पहले ही पूँजीपति अभागे का

दुर्भाग्योदय हो गया। या कोई इसे दूसरे नाम से भी पुकार सकता है ?

अब किस तबीयत से कोई नौकर से 'कॉफी' चाहता। काफी इससे ज्यादा और क्या ? फिर, मेरे कहने पर भी मालकिन के डर से नौकर 'कॉफी' न बनाता। मैं परिस्थिति से पीड़ित मन-ही-मन जल-भुनकर रह गया। अपने सौभाग्यमुखी दुर्भाग्य पर।

हम चमचम वातावरण मे मरते भी हो, तो लोग समझते है, 'रस ले रहे है', धातु-पुष्टक। भांड के पेट मे 'कालिक पेन'—भयानक दर्द—लोग समझते नकल कर रहा है। भांड ही की तरह अमीरी का नक्काल चंचला-पति भी सहानुभूति-विहीन प्राणी होता है। और मैं भी ऐसे ही मरूँगा। और 'सब ठाठ धरा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा'।

बे चाह के घर से चोर की तरह दबे पाँव मै बाहर निकला। सोचा 'कॉफी' नहीं मिली, तो प्रातःकालीन वायु ही सही। वायु से तो श्रीमतीजी की नींद नहीं टूटेगी ? वायु-सेवन के लिए तो नौकरों की मदद की ज़रूरत नही ? आग लगे इमारत मे। भाड़ मे जाय मतलबी-परिवार। सत्यानाश हो सम्पति का—'वह सम्पति केहि काम की, जनि काहू पै होइ, नित्य कमावे कष्ट करि, बिलसे औरहि कोइ।' मालूम नहीं मुझ जैसे सम्पति के 'मर्मी' के सामने अनुभव के बाद विधाता कमलासन वरदान देने आवें, तो फिर सम्पति मैं माँगू या नहो ? कम-से-कम मैं तो ऐसी सम्पति हरगिज़ माँगने वाला नहीं। इस विशाल, नीरस, रेगिस्तानी, स्वार्थ मलीन सम्पति से तो कहीं अच्छा केवल पेट भर भोजन, तन भर कपड़े और मन भर नींद। पर क्या कपड़े ही से काम चल जायगा ? मैं बंगले के बाहर, बाग़ के बाहर, फाटक के बाहर निकलते-निकलते सोचने लगा कि क्या केवल पेट भर भोजन और तन भर वस्त्रों से काम चल जायगा ? स्रष्टा, विधाता अगर सामने

आ जायँ, तो स्वास्थ्य के साथ इतना ही माँगकर शेष जो मेरे पास है, उसे छोड़ सकूँगा ? शेष छोड़ देने पर फिर बच ही क्या जायगा ? ना, ना ! केवल स्वास्थ्य, भोजन और वस्त्र पर इतनी बड़ी सम्पति छोड़ना, मुट्ठी भर बालू पर रत्नाकर बेचना है ।

पर ये कौन ? मेरी नजर उन दो सफ़री झोपड़ों पर गयी जो मेरे अहाते की दीवार मे लोहे के टुकड़ों के सहारे शायद आज ही कल मे तैयार किये गये थे। हाँ, याद आया । कल ही शाम को नौकर पूछ रहा था कि कोई जरायमपेशा परिवार बाहर झोंपड़े बना दो-चार दिन रहना चाहता है और मना करने पर भी जा नहीं रहा है। फिर मुझे याद आया कि मैंने नौकर को अच्छी तरह से समझा दिया था कि उन्हे किसी भी शर्त पर ठहरने न दिया जाय, क्योंकि इन जरायमपेशा वालो का कोई ठिकाना नहीं। पहले एक झोपड़ी लगाता है, फिर दूसरा और फिर देखिये तो पूरा खेड़ा तैयार बखेड़ो भरा ! एक को हटाया या भगाया भी जा सकता है । पर जहाँ इनकी सेना इकट्ठी हुई वहाँ सिवा फ़जीते के जीत का नाम भी नही । नौकर कमबख्त ने इन दरिद्रो, लुटेरो, रोग के घरो को मना करने पर भी आख़िर ठहराया क्यो ? ज़रूर कुछ-न-कुछ रिश्वत ले ली होगी । मेरे मन मे आया कि उसी वक्त नौकर को बुलाकर अपने सामने उन झोपड़ो को उजड़वा, घुमक्कड़ जरायमपेशो को पुलिस की हिरासत मे डलवा दूँ। मै भी किसका मुँह देखकर आज उठा । शायद उठते ही मेरी नज़र आइने पर पड़ी थी। चाय नही, कॉफी नहीं, घर मे चैन नही और बाहर ज़रा मरने (घूमने) को निकला, तो यह जलसा । अच्छा रे ! दिखाता हूँ आज कि मैं भी क्या हूँ। पत्नी से डर जाता हूँ तो सभी से डरूँगा ? कोई इस धोखे मे न रहे । नौकर क्यो ? मैं खुद भी इतना कमज़ोर नही कि दो चिथड़ीले झोपड़े न उजाड़ सकूँ । तो मै अपने हाथ से झोपड़े उजाड़ूँगा ।

ज़रा हवा खाकर लौटने तो दो मुझे।

और कौन हवा खाता है तब जब कि मन किसी के झोपड़े उजाड़ने में लगा हो। कमज़ोर क्रोध से सनक अपने बंगले ही की परिक्रमा कर मैं पुन उन्हीं झोपड़ो के पास आ गया। बिना जाने, बिना चेष्टा किये कहिये—लेकिन इस बार मैं प्राय पीछे की तरफ़ था। ऐसी जगह जहाँ से झोपड़ो की सारी लीला स्वयं को प्रकट किये बिना ही नज़र आती थी। मैंने देखा वह बदमाश-परिवार पूरे पाँच प्राणियो का था। बूढ़ी माँ, नौजवान लड़का, तरुणी बहू और दो छोटे छोटे लड़के।

मैंने देखा, चीथड़े-चटाई से घेरकर घर के रूप मे सजाया गया वह स्थान झाड़-बुहार और लीपकर अच्छी तरह साफ़ किया गया था। एक कोने मे दो-तीन ईंटो से बने चूल्हे पर टीन के बड़े डिब्बे मे पानी उबलकर उमाँसे ले रहा था। तरुणी बड़े लड़के को साफ़ करने के बाद टूटी बाल्टी के पानी से छोटे लड़के को स्वच्छ करने मे लगी थी और बूढ़ी एक कोने मे पड़ी गन्दी गठरियो मे कुछ ढूँढ रही थी।

"तुम क्यो तकलीफ़ करो हो अम्माँ?"—तरुणी बोली, "तुरत रामा को साफ़ कर मैं चाय तैयार किये देती हूँ न!"

"खबरदार, सूअर!"—फटे कम्बल मे से मुँह बाहर कर नौजवान घुमक्कड़ बोला, "मेरी अम्माँ से कोई काम कराया तो बोटी-बोटी अलग कर दूँगा।"

मैंने देखा परिवार का तरुण पालक वह घुमक्कड़ घनघोर काले रंग का गठीला और मज़बूत। उसने क्रोध नहीं, प्रेममय-विनोद से पत्नी को डाँटते हुए अपनी अम्माँ का सम्मान किया था। उसकी भाषा मे यह उसके प्रात.-प्रणाम की तरह था।

"जिस दिन यह सूअर न रहेगी .."—तरुणी ने रामा को पोंछते हुए कहा, "उस दिन सूरज निकलने के पहले लीप-पोतकर

तेरा घर दर्पन की तरह साफ़ न होगा। बच्चे गधा-लोट लोटते नजर आयेंगे। यह जो चर्बी आज है तेरी आँखों में—सूअर न रहेगी, तो न रह जायगी। चल उठ ! चाय तैयार ही है।"

तरुणी ने बच्चे को छोड़ पोटलियों से काग़ज़ की पुड़िया बाहर की, फिर दूसरी पोटली से गुड़ के दो बड़े-बड़े टुकड़े। देखते-ही-देखते सिगरेट के पुराने डिब्बों और मिट्टी के प्यालों में 'स्टीम उबलती चाय' परिवार के प्रत्येक प्राणी के होठों के निकट। गुड़ की चाय की तेज़ी से रामा उछलने लगा, माँ सावधान न होती तो उसने अपनी चाय गिरा दी होती। उसका बड़ा भाई कल्लू त्रिभंगी मूर्त्ति बना अँगुलियों की मुरली बजा नाचने लगा। और सूरज की पहली किरणें चिथड़ीले झोपड़ों पर सुनहले पुआल की तरह बरस पड़ीं। दोनों झोपड़े ज्योतिर्मय! वातावरण प्रफुल्लतापूर्ण!!

इतना प्रकाश, इतनी प्रसन्नता, ऐसी स्वच्छता, ऐसा स्नेह-प्रवाह मुझ करोड़पती के घर या महा-महल में नहीं! मुझे नहीं मालूम था कि ख़ानाबदोशों में भी ऐसी स्निग्ध-पारिवारिकता होती है, ऐसा प्रसन्न स्वास्थ्य होता है। जरायमपेशा नाम से कुख्यात ये लोग इतने सरस भी होते हैं, मुझे मालूम नहीं था। मुझे अपने पहले निर्णय और आक्रोश पर बड़ा पश्चात्ताप होने लगा। आह! उन आवारों का वह प्रसन्न जीवन पाने के लिए ऐसी कौन रकम है, जो मैं दे नहीं सकता। मेरे मन में आया चुल्लू भर गुड़ की चाय उनके उन्हीं कुपात्रों में मैं भी पीऊँ। दरिद्रता में प्रसन्न उस अन्नपूर्णा-गृहणी से भीख माँगकर। और भावावेश में मैं उनके सामने उपस्थित हो गया।

घुमक्कड़ परिवार के कलूटे तरुण स्वामी ने जैसे मुझे पहचाना। थर्राकर वह खड़ा हो गया, साथ ही, सारा परिवार दोनों टाँगों पर। तरुणी ने गंदी साड़ी का घूँघट सावधानी से मुँह पर खींच

लिया। सचमुच सब-के-सब काँपने लगे—स्वस्थ्य छोकरो को छोड़कर। वे निर्भय आश्चर्य से गुरेरते हुए वे दाहने-बाये खड़े हो गये।

'राजा!"—पहले बूढ़ी बोली, "पाँचो अँगुलियाँ बराबर नहीं होतीं। हम बुरे नही है। कही और जगह न मिलने और पुलिस वालो की बदमाशी से बचने के लिए रात यहीं ठहर गये है। अब रहने दे तो दो-चार दिन ठहरकर शहर मे माँग-खायेगे; नहीं तो अभी कील-काँटा उखाड़ अपने रास्ते लगते है।"

"कौन छाती पर लादकर ले जायगा यह महल-बखरी बूढ़ी माता?"—मैंने स्निग्ध-शब्दो मे कहा, "मैं तो तुम लोगो की सफ़ाई और घरेलू मुहब्बत से बड़ा ही खुश हूँ। जितने दिन तुम्हारा जी चाहे, यहाँ रहो। पुलिस तुम्हे छेड़ेगी नही, ज़िम्मा मेरा। और कुछ .?"

४

ब्लैक एण्ड ह्वाइट

हेड पुलिस स्टेशन बम्बई से सेठ भारतभूषण ६॥ बजे सवेरे के गये लौटे २॥ बजे दिन। और कैसे भन्नाये, कि आते ही सारे बॅगले को माथे पर उठा लिया उन्होने।

"माता! माता जी!" पहले अपनी माता को पुकारा, फिर स्त्री, पुत्रियॉ सबको सहेजकर सावधानी से बॅगले के मुख्य कमरे मे इकट्ठा किया। कमरे के दरवाजे अपने हाथो बन्द किये और वह कुछ बोले इसके पहले सारे परिवार के चेहरे पर किसी अचिन्तित आशंका की हवाइयॉ उड़ने लगी।

"देखो माता जी, देखो रानी!"—उन्होंने पत्नी को सतर्क किया, फिर पुत्रियो की ओर वह मुखातिब हो बोले, "देखो शीला, सुशीला, सुधा, देखो रमेश, उमेश, देवेश मैं जो कुछ कहता हूॅ उसे तुम सभी ध्यान से सुनो और अभी—जल्द-से-जल्द सोच-विचार कर उत्तर दो।"

"क्या है ऐसा प्रश्न?"–मॉ ने स्निग्ध-तीव्रता से पूछा, उपालंभ के स्वर मे, "यो डरा दिया जैसे तूफान आने वाला हो!"

"देखो अम्मॉ!"—भारतभूषण भोले की पत्नी ने सास से कहा, "अभी तक मेरा सीना धड़क रहा है।"

"बेशक तूफान आ ही नहीं रहा, सर पर आ धमका है

अम्माँ! तुम्हारा मस्तक जाति-पाँति मे गर्वित रखने के लिए, रानी! तुम्हे सोने से पीली और रत्नों से चमकीली रखने के लिए, लड़कियो! तुम्हे गुलाब-सा खिला रखने के लिए, पुत्रो! तुम्हे हर तरह से सुगम-गामी रखने के लिए, मैंने वो-वो पाप किये है—झूठ, फरेब, जाल, ब्लैक-बाज़ारी, सरकारी टैक्स हड़पना आदि कि अगर मेरा भेद सप्रमाण कोई कल खोल दे, तो मैं सर से पाँव तक क़ानून की ज़ंजीर में जकड़ा-पकड़ा जेल मे दाखिल। धर्मराज से लेकर ब्रह्मा-विष्णु तक मुझे दुर्दशा और जेल से नहीं बचा सकते। कम-से-कम बीस वर्ष की सजा सुरक्षित रखी है मुझ जैसे बदमाश के लिए।"

"अरे हाय रे हाय!"—औरत छाती कूटकर रोने पर आमादा हुई, "इन्हें हो क्या गया?"

"तू जेल जायगा तो यहाँ जीता कौन रहेगा?"—माँ ने कहा।

"जियें भी तो" सेठानी ने कहा, "वह भी कोई ज़िन्दगी होगी। जेल जायँ तुम्हारे सात मुद्दई। तुम्हे मेरी कसम जो ऐसी कुभाषा कभी फिर निकालो।"

"जेल तो निश्चित है रानी!"—भारतभूषण ने गम्भीरता से सुनाया, "जेल तो मृत्यु की तरह निश्चित है, हरेक ब्लैक-बाज़ारी को। किसी को आज, किसी को कल। फल अपने किये का भोगना ही पड़ता है। पड़ेगा। मैं दिल्लगी नहीं कर रहा, अभी कोतवाली से आ रहा हूँ। मेरे पुराने दोस्त इन्सपेक्टर जोन्स ने बुलाया था। वह डिप्टी पुलिस कमिश्नर के पद पर पुनः विलायत से बुलाया गया है। क्योंकि बम्बई शहर के प्रति उसकी सेवाएँ अमूल्य मानी गयी हैं। अपनी इन्सपेक्टरी के ज़माने मे उसने इस शहर के एक-एक गुण्डे को परास्त किया था। तब यही जोन्स मेरा दोस्त था। इससे मिलकर, इसके मुट्ठी-पंजे गरम कर, जितने व्यापारिक उलट-फेर,

टैक्स-हड़पी वगैरह मैंने किये थे वह सब जानता है। वह चाहे तो आधी रात को मुझे हवालात में बन्द करा सकता है।"

"पुलिस वाला है, दबाता होगा नया रस निचोड़ने के लिए; कुछ दबीज नजराने से काम हो जायगा और जैसे तीन साल पहले चलता था वैसे ही चलने लगेगा।"—बड़े लड़के रमेश ने कहा।

"सो सब अन्दाज मैंने टटोल लिये।"—सेठ ने सचिन्त्य उत्तर दिया, "वह कहता है—अब वह कांग्रेस गवर्नमेंट का नमक-ख्वार है और एक अच्छे अंग्रेज की हैसियत से ऐसा कोई काम जान-बूझकर नहीं कर या करा सकता जिससे ब्रिटिश जाति का सर नीचा हो। उसने कहा ब्लैक मार्केट के पिशाच इस देश की व्यवस्था का सत्यानाश किये दे रहे हैं और वह जब तक पुलिस में है एक भी चोरबाज़ारी, ठग व्यापारी को बर्दाश्त नहीं करेगा। उसने कहा—सेठ! तुमने भारत सरकार के पचीस लाख रुपये दबा रखे है, आते ही मैंने सारे शहर के रंग का अन्दाज खींच लिया है। अब रुपये भी दो और विविध अपराधों मे कम-से-कम बीस वर्ष जेल भी काटो। मैं तुम्हे 'टेस्ट केस' बनाऊँगा और तुम्हारे मॉडेल पर शहर के सभी ब्लैकियो से व्यवहार किया जायगा।"

"भगवान महावीर जी!"—सेठानी ने मनौती मानी, "यह संकट टाल दो तो तुम्हे बेसन के बड़े-बड़े लाडू अपने हाथों बना कर चढ़ाऊँ।"

"इससे नहीं होगा।"—भारतभूषण भोले ने अपनी पत्नी को समझाया, "अपराध करने के बाद आदमी जब जम की फाँस या कानून के शिकंजे मे गिरफ्तार हो जाता है तब भगवान महावीर या अलौया पीर कुछ नहीं कर सकते। दुनिया के चोरों को सवा सेर लड्डू की रिश्वत पर बचाने का बीड़ा देवताओं ने उठाया है यह सोच लेना जलते घर को 'हनुमान चालीसा' से बुझाने की तरह हास्यास्पद है। जेल तो होनी ही है, और बीस ही साल की; पर

मि० जोन्स ने सज़ा कम होने की एक तरकीब सुझाई है। उसका कहना है कि अगर तुम्हारे खानदान का हरेक मेम्बर दो-दो साल की सज़ा भुगतने को तैयार हो जाय, तो बीस का ज़ीरो उड़ाया जा सकता है। नहीं तो अकेले ही बीस वर्ष काटने पड़ेगे।"

"भगवान करे मुद्दई भी जेल के फाटक के अन्दर न जाय। मुझे कोई अन्दर ले जाकर देख ले, मरा मुर्दा ही बाहर निकलेगा फिर। खूब जन्मा पूत तू भी ! जब कि हमें तीर्थ कराना चाहिए था, तू दो साल जेल भोगाने की सोच रहा है।"

"जेल जाने के दिन आयेगे तो हम तीनों बहनें लखनऊ, अपने नाना जी के यहाँ, चली जायँगी।"—बड़ी शीला ने तीनों बहनों की ओर से कहा।

"हम तो भाई सिद्धान्त के लिए जेल जा सकते है, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट या स्वतन्त्र, अराजक-चिन्तक की हैसियत से। मुँह पर काले चोर का लेविल लगा जेल जाना उस कुल की कुलीनता नहीं जिसकी परम्परागत मर्यादाओं के हम उत्तराधिकारी हैं।"—रमेश ने मानो तीनों भाइयों की तरफ़ से सम्मिलित उत्तर दिया।

"समझ गया· ·"—हताश साँस छोड़कर भारतभूषण भोले ने अपनी पत्नी की ओर देखा —"इन सबकी तो सुन चुका अब तुम क्या कहती हो ? तुम तो सीता-सावित्री की परम्परा पर ही पग रखोगी ?"

"आप ही ने इन्साफ कर दिया,"—पत्नी ने कहा, "सीता-सावित्री पति के साथ जंगल में गयी थी जहाँ ऋषि-मुनि रहते थे, न कि जेल में जहाँ दुनियाभर के बदमाश उठाईगीरे रहते हैं। मेरी फ़िक्र आप न करें। जब तक ये बच्चे है—मैं बाहर भी जेल ही मे धरी-सी हूँ। पर, अगर आपका जेल जाना—भगवान न करे—निश्चित ही हो, तो सबकी भलाई ध्यान में रखकर जो

भी नकदी हो वह सब बीमे मेरे नाम जमा करा दो या ख़तरा हो तो लखनऊ मेरे बाप के यहाँ भिजवा दो। सब कुछ नष्ट होने के मौके पर बुद्धिमान आधा-तीहा, जो बच सकता है, बचाता है। आख़िर जेल से लौटोगे तो व्यापार-धन्धे के लिए कुछ ज़रूरी होगा ही।"

"समझ गया ..."—भारतभूषण हताश की तरह गद्दीदार कुर्सी पर बैठ गया और कई क्षणों तक कुछ सोचता और मन-ही-मन तोलता रहा। "तुम लोग महज़ मतलब के संगी, नाम पड़ा परिवारी। रस हमारा सबको चाहिए, चाहिए सबको मेरे खून की एक-एक लाल बूँद, पर मेरे डूबते यश, मिटते प्रकाश, बिखरते जीवन में सँभाला देने को एक भी सहज तैयार नहीं। यह रही दुनिया। लिखा तुलसीदास ने—"सुत बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह इनहीं ते, अन्तहु तोहि तजेंगे पामर, तू न तजै अब ही ते।"

कई मिनिटो तक भारतभूषण स्तब्ध मौन रहा और इतनी ही देर में दुनिया ही की नही विश्व-ब्रह्माण्ड की बाते सोच गया। वह मन-ही-मन बहुत ही नाराज़ था घरवालो के इस स्वार्थीपने से। अरे एक ने भी तो—और वचन मात्र से भी—मुसीबत मे उसका साथ देने का वादा नहीं किया! और ये है अपने कहलाने वाले! इन्हीं के लिए अंग्रेज़ी कहावत लोग दुहराते है कि 'पानी से खून गाढ़ा होता है।' सब झूठी बात। गोस्वामी जी ने ही ठीक लिखा है कि—'अन्तहु तोहि तजेंगे पामर, तू न तजै अब ही ते।' इन्हे अब ही से छोड़ देना चाहिए।

"रानी!"—भारतभूषण ने अपनी पत्नी को ललकारा, "मैं गम्भीरता से बोल रहा हूँ, मज़ाक नहीं। तुम लोग मेरा दुख नहीं बाँट सकते, तो मेरी कमाई भोगने का तुम्हे कोई हक नही। तुम्हारे जितने गहने है—अम्माँ के और लड़कियो के भी—सब एक जगह जमा कर मुझे दो। उन्हे बेचकर मैं रुपये खड़ा करूँगा।

"ओ तेरा दीदा !"—अम्माँ ने अपना माथा पीट लिया, "आज तक कच्चे-सूत का एक कंगन भी तो कभी अम्माँ को न दिया होगा। मेरे गहने हैं—और लाखों के—पर सब तेरे बाप के बनवाये या मेरे बाप के। बिना मेरे प्राण लिये मेरे गहनों को कोई हाथ लगा नहीं सकता।"

"मेरे गहने भी इनके कैसे !"—पत्नी ने गम्भीरता से कहा, "इन सबको स्त्री-धन माना जाता है जिसे अबला पर अत्याचार किये बग़ैर कोई पुरुष ले नहीं सकता। ले भी तो क़ानून और लोक-मर्यादा की निगाह मे सम्माननीय नहीं रह सकेगा। यह तो लड़कियों तक के गहने माँग रहे हैं! हे भगवान! इन्हें हो क्या गया है ?"

अब भारतभूषण के लिए वहाँ बैठना असम्भव-सा मालूम होने लगा। झटके से उठकर वह पुन. बँगले से बाहर आया।

"ड्राइवर ! गाड़ी !!"

और जब तक मोटर गैरेज के बाहर नहीं आई सेठ भारत-भूषण इस बेचैनी से टहलता रहा जैसे गरम तवे पर ज़िन्दा मछली। गम्भीर चिन्ता मे मग्न, अक्सर, वह दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर बायें की हथेली पर आवेश से मारता। भँवों पर बल दे, माथा सिकोड़ और तर्जनी अँगुली से कपाल ठोंककर वह किसी कठिन निश्चय पर आने की चेष्टा कर रहा था। मोटर तैयार होते ही लपककर उसमें जा बैठा। "हैड पुलिस स्टेशन !"—उसने हिदायत दी।

और डिफ्टी कमिश्नर पुलिस मि० जोन्स उस वक़्त भी आफिस मे था। शायद उसने उस वक़्त तक लौट आने का आदेश भारतभूषण को दे रखा था। भारतभूषण के दाख़िल होते ही एक-दो पुलिस अधिकारी जो वहाँ बैठे थे सावधानी से हट गये।

"हलो ! मिस्टर भारतभूषण !"—सामने की कुर्सी तकाते हुए

जोन्स ने कहा—"दो घंटे के अन्दर आपका चेहरा पच्चीस परसैंट सूखकर सिकुड़ गया है। आप अपनी उम्र से दस साल बड़े मालूम पड़ने लगे हैं। क्या हुआ ? हुए आपके घर वाले राजी आपकी सजा बाँटने को ?"

"एक भी साथ देने को तैयार नहीं जनाब! मैं इसका बुरा भी नहीं मान सकता; क्योंकि, यही सारी दुनिया का रवैया है। मेरा घर कुछ फरिश्तों की दुनिया में नहीं। सो जो अपने हों, या जिन्हें अपनाने मे मजा आता हो, उनके सारे नाज़ उठाने ही होंगे। वक़्त पर बिना कुछ उम्मीद किये ! सो, साहब—हे...हें.. हें—आपसे मेरा या इस शहर के किसी भी रोज़गारी व्यापारी का छिपा क्या है ? साथ ही आपसे यह भी न छिपा होगा कि यह 'ब्लैक बाज़ार' हमेशा कमोवेश रहा है और रहेगा। फिर हमारा और जनाब का सम्बन्ध भी जो हमेशा रहा है, वही क्यो न बना रहे ? आप कहते हैं कि सरकार के पचास लाख रुपये मैंने उड़ा लिये हैं। हो सकता है। पिछले दिनों व्यापार के नाम पर जो सबने किया मैंने उससे कुछ नया नहीं किया। सो, जनाब ! पाँच लाख रुपये नक़द मैं आपकी ख़िदमत में हाज़िर किये देता हूँ और आप भी खुश रहे, मैं भी। यह सरकार कोई आदमी तो है नहीं जिसे ठगने में पाप लगेगा।"

"इम्पॉसिबल !"—पुलिस जोन्स ने कहा, "आज़ादी के बाद हमारी-आपकी ज़िम्मेदारियाँ बढ़ गयी हैं। सरकार एक आदमी न होकर भी हज़ार भुजाओं से सबका शासन कर सकती है; अत भगवान की तरह पूज्य है। सरकार नहीं, तो कुछ भी नहीं। सरकार को ठगना व्यक्ति को ठगने से सहस्र गुना अधिक गंभीर पाप है। आप पुराने दोस्त हैं, इसलिए एक बार चुप रह जाता हूँ, फिर कभी रिश्वत की चर्चा चलाइयेगा तो उसी वक़्त कोर्ट मे केस करा दूँगा। इम्पॉसिबल ! कोई भी समझौता संभव नहीं।

आप असली खाते पेश करें और सही-सही हिसाब जो हो सरकार को दें। सच्चाई से काम लीजियेगा तो मैं आपकी सज़ा कम-से-कम होने दूँगा। हमा चाहते हैं कि आपके केस से सुप्रभावित हो कर दूसरे ब्लैक बाज़ारी भी, ईमानदारी से, सरकारी रक़म लौटा दें। सो, बदला हमारी नीयत नहीं; तबियत नहीं किसी को व्यर्थ परेशान या अपमानित करना। लेकिन सरकार ठगी जाय, यह हमें हर्गिज़ गवारा नहीं। इस बारे मे दूसरी बात नहीं। बिना निमंत्रण, कल ही, आप अपने खाते, सही हिसाब और उड़ाई हुई रक़म को साथ लेकर चीफ प्रेसीडेंसी मैजिस्ट्रेट के सामने हाज़िर हों। ठीक साढ़े दस बजे। भूल न हो, क्योंकि कल के बाद दिवाली की छुट्टियाँ होने वाली हैं। नये साल के पहले हिसाब साफ कर देना ही उत्तम है। अब आप जा सकते हैं। कल साढ़े दस बजे, चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट का इजलास।"

और सेठ भारतभूषण के चेहरे का रंग देखो तो झावाँ-ऐसा! गोरा चेहरा निकट विपत्ति की प्रघोर चिन्ता से मैले ताँबे-सा हो गया! वह रो नहीं रहा था, क्योंकि मर्द के आँसू मुश्किल से निकलते हैं, पर रो देता तो शायद उसका सीना कुछ हल्का हो जाता। यह सब तेज़-निगाह पुलिस जोन्स ने ताड़ा और उसे भला न लगा।

"अफसोस, मि० भारतभूषण!"—जोन्स ने कहा, "आजाद हो जाने पर भी इस मुल्क वाले ज़िम्मेदार बनना नहीं चाहते। आप नहीं समझेंगे, तो समझेगा कौन? जिस परिवारमें आपकी विपत्ति बाँटने को एक भी शख्स तैयार नहीं, उसी को प्रसन्न और पुष्ट रखने के लिए आप सरकार को ठगते हैं! यानी प्रत्येक नागरिक को आप ठगते है। ऐसे ही सब करते जायँगे तो यह स्वराज्य टिकेगा कितने क्षणों? आप-जैसो को देखकर आपही के महाकवि वाल्मीकि का आरम्भिक जीवन मुझे स्मरण आता है। उनके पूछने पर भी

दण्ड में हाथ बँटाने से परिवारियों ने नामंजूर कर दिया था। इसके बाद उनकी तो आँखें खुल गयी थीं पर आप लोगों की नहीं खुल रही हैं!"

और घर लौटता भारतभूषण सारी राह वाल्मीकि से अपनी तुलना करता रहा। जब वाल्मीकि के परिवारियो ने नरक में भाग लेना अस्वीकार कर दिया तब उसे तमाचा लगा कि वह किनकी सेवा कर रहा था—किन पाप-कर्मो से! और अन्त में अकेले जाना होगा, अकेले भोगना होगा अपने किये कर्मों का फल। जेल मे चाहे कोई साथ दे भी दे, पर भयानक रोगों पर किस का वश? और एक-एक रोग ऐसा जिसमे हज़ार जन्मो के पापो के पश्चात्ताप की पीड़ा। फिर आदमी असत्कर्म करे ही क्यो? और हो ही जाय तो उसे सबके आगे मंजूर कर यथासाध्य यहाँ का दण्ड यहीं पर क्यो न भोग ले?

यह जोन्स छोड़ेगा नही। यह चाहे तो इसी क्षण मुझे ताले मे बन्द करा सकता है। कराकर रहेगा। जोन्स इरादे का पक्का आदमी है। सो, क्यो न उसी की सलाह मानी जाय और गवर्नमेंट को सारा व्यापार उघाड़कर दिखाकर चोरी की रकम लौटा दी जाय? इस प्रयोग मे प्रकाश की रेखा यह है कि न्याय प्रायश्चित्त-तत्पर के प्रति उदार हो सकता है। पर पच्चीस लाख रुपये नक़द इस वक़्त देना, एकमुश्त; कुछ मज़ाक नहीं। रुपये कमाये भारतभूषण ने, लोग कहते है करोड़ के ऊपर—पर वही; बरसाती पानी पनालो बहता रहा! बराबर बेहिसाब ख़र्च। सो, सिल्लक या नगदी उसके बैंक के हिसाबो में दस लाख भी नहीं, व्यापार में चाहे जितनी रकम लगी हो! फिर, पिछले दिनों अनेक रोज़गारों और फाटको मे उसे पचासो लाख का धक्का भी लगा था। ऐसे कुमौके पर जोन्स का अधिकारी-पद पर सत्यवान बनकर आना भारतभूषण के लिए 'ग्रह ग्रहीत पुनि बातवश, तेहि पुनि बीछी

मार, ताहि पियाइय बारूणी ..हो' गया। अब सिवा पच्चीस लाख रुपये जमा करने के उसके सामने कोई दूसरा रास्ता रह नहीं गया। उसने सोचा कि सच्चाई ही सर्वोत्तम नीति हो सकती है। पर उसने पुन. सोचा, कि यह सच्चाई-प्रेम तो हृदय से उपजा नहीं, बल्कि जोन्स और क़ानून के भय से पैदा हुआ है। फिर भी, अच्छा काम जैसे भी हो अच्छा ही माना जाता है। पर पच्चीस लाख रुपये आयेंगे कहाँ से ? भारतभूषण सोचने लगा, पर उसे कोई सूरत नज़र नहीं आई। इस चिन्ता में वह इतना मग्न था कि कब मोटर बगले पर आयी, कब वह उतरकर अपनी बैठक मे सोफे पर आ बैठा, उसे पता नहीं। वह बराबर पच्चीस लाख की भरती पूरी करने की कोशिश करता रहा। उसने जोड़ा, वह अपने व्यापारो के सारे हिस्से बेच दे और बैंक से सारी रक़म निकाल भी ले, तो भी बीस लाख से अधिक नही हो सकेगा। और बीसों लाख सरकार को दे देने पर वह राह के भिखारी से बदतर हो जायगा—पर—पर काल छोड़ दे, जोन्स नहीं बख्श सकता। वह भारतभूषण के सारे एजेन्टों को या तो जानता है या जान सकता है सहज ही। वह तो जितने दिनो के लिए चाहेगा बड़े घर भिजवा देगा। कहा उसने, "कल साढ़े दस बजे सवेरे सी० पी० एम० के कोई मे बहीखाते लेकर आओ। और दो दिनों बाद ही दिवाली। अच्छी दिवाली दिखाई दुर्भाग्य ने उसे, सोचा भारतभूषण ने। पर बुरी क्या ?—जो परिवार उसका दुख बँटाने को तैयार नहीं उसके लिए वह अनवरत पाप करे क्यों ? जो कुछ किया है जान-बूझकर, उसका प्रायश्चित भी सावधानी से क्यों न कर डाले ? कृतं कर्म शभाशुभम् अगर भोगना ही पड़ेगा तो शुभस्य शीघ्रम् —यानी जो होना ही है वह जल्द-से-जल्द होकर रहे। रोज़-रोज़ की मन-तापक-कुचिन्ता तो दूर हो।

और दो बजे रात तक सेठ भारतभूषण भोले न जाने कहाँ-कहाँ

टेलीफोन घनघनाता रहा। इस बीच कई तगड़े, चिकने, महाजन उससे मिलने भी आये। बैरिस्टर और सालिसिटर दिखाई पड़े। बड़ी झकझक रही, बड़े भाव-ताव। सेठ भारतभूषण सोने तब गया जब अपना सर्वस्व बेचकर बीस लाख रुपये, चेक भी नहीं नोटो मे नक़द—उसके सामने आ गये। बीस लाख रुपये नक़द तिजोरी में रखकर बाकी रात सेठ भारतभूषण कंगाल और कैदी की मनोदशा मे दो-तीन घंटे सोया। सूर्योदय के पहले ही वह जागा और जागते ही सोचने लगा कि कब दस बजें और वह मैजिस्ट्रेट के कोर्ट मे हाज़िर हो अपना अपराध मंजूर कर, सरकारी रुपये जमाकर, इस नारकीय, दाहक, मनस्ताप से फुर्सत पावे। फिर, उसने सोचा कि असल दिवाली का व्यापारी-रंग यही कि देना-पावना चुकता रखा जाय। उसने सोचा, एक बार उसके परदादा ने सब कुछ बेचकर बाज़ार का देना भरा था—हिब्बा-हिब्बा। और फिर ईश्वर की कृपा से वह ऐसे पनपे जैसे सरकलम होने पर पुदीना। इस तरह अपने को बेच, सच्चाई से सरकारी टैक्स भरकर वह वही कुलीन-कर्म परम्परा जारी रखेगा जिसे धर्मबुद्धि बुज़ुर्गों ने क़ायम किया है। उसने सोचा, गर्त में वह गिर तो रहा है, पर गर्व से। आगे भगवान मालिक।

जिस दिन सेठ भारतभूषण ने चीफ प्रेसीडेन्सी मैजिस्ट्रेट, बम्बई, के सामने अपना गुनाह कबूल कर सरकारी रुपये और 'ब्लैक' और 'ह्वाइट' धंधो के सही हिसाब पेश कर अपने को क़ानून के हाथों में दिया उस दिन के सायं-पत्रों मे, जिसमे देखिये उसी मे, सेठ भारतभूषण भोले की सचित्र-चर्चा, बन्दनवार-शीर्षको मे। प्राय: सभी हेडिंगो में प्रशंसात्मक-प्रवाह, जैसे मराठा-पत्र 'नवाकाल' ने 'काले चोर का सुफेद सीना' शीर्षक, 'नवज्योति' ने 'भले सेठ भारतभूषण भोले', 'बम्बई समाचार' ने 'आदर्श ब्लैक मार्केटी, दूसरे उपदेश ग्रहण करें'। 'फ्री प्रेस जनरल' ने 'हिम्मती

सेठ भारतभूषण भोले !' शीर्षक लगाया था।

और केस तो चला ही, पर सारा बम्बइया-प्रेस बिना कौड़ी लिये भारतभूषण भोले के प्रति परम उदार। टिप्पणी किये बिना ही सबने सरकार को इशारा किया कि ऐसे भले आदमी के प्रति उदार बनकर वह दूसरे चोर-बाज़ारियों की पाप-मुक्ति की राह प्रशस्त करे। केस अभी चल ही रहा है, अतएव कोई समझदार आदमी उस पर नुक्ताचीनी कर ही कैसे सकता है। पर, जन-साधारण, कानून की इस बारीकी से अनजान, अपनी राय क़ायम करता ही है। जैसे चौपाटी की एक बेंच पर तीन-चार महिलाएँ इसी केस पर बहस कर रही थी। उनमें एक बूढ़ी महाराष्ट्रीय महिला थी जिसने यह राय दी कि "मैं सरकार होती तो सेठ भारतभूषण का सत्यानाश न होने देती और धीरे-धीरे सरकारी रक़म वसूल कराती। साथ ही मैं सेठ भारतभूषण के घर की महिलाओ की सारी रक़मे ज़प्त करा सरकारी खज़ाने मे जमा करा देती।"

"क्यो अम्माँ, औरत होकर आप औरतो पर ऐसी नाखुश क्यो है?" एक गुजराती लड़की ने पूछा।

"इसमें औरत या मर्द की बात नहीं है बेटी ! इन्साफ़ की बात है। मुसीबत मे सेठ भारतभूषण के परिवार की महिलाओ को घर के सरदार की रक्षा-सहायता के लिए सब कुछ करना ही चाहिए था। यह बिलकुल अनार्य है।" अम्माँ ने तीव्र हो कहा, "जो कुछ महिलाएँ परिवार पर संकट आने पर भी धन को नहीं त्याग पातीं, ऐसों की दृष्टि धन-मोह से चर्बीली हो जाती है। ऐसी स्त्रियो को को कानूनन दण्डनीया होना चाहिए; क्योंकि, मर्द-औरत दोनों के पुष्ट-सुधार से ही सन्तुष्ट-समाज का सर्जन सम्भव है।"

५

रमा, बी० ए०

आप मेरा नाम जानते है। ज़रूर, भले ही यह न जानते हो कि जिसे आप इतने निकट से जानते हैं वही बन्दे का ही नाचीज़ नाम है। 'वफ़ा', लाहौरवी का नाम सुना नहीं, पढ़ा भी होगा, सिनेमा-पर्दों पर 'पेपरों के दामन' पर आपने। मैं वही 'वफ़ा' लाहौरवी ही हूँ। पर, वफ़ा, मेरा, तख़ल्लुस या उपनाम है, नाम असिल है—उल्फ़तराय।

अब भी पहचाना जनाब ने कि नहीं? अजी वही उल्फतराय, 'वफ़ा' जिसके फ़िल्मी-गाने जमाने की ज़ुबान पर घर-घर, दर-दर, मुखर-मुखर। वही उल्फतराय, 'वफ़ा' जिसने केवल फिल्मी-गाने लिखकर दो-दो लाख रुपये पैदा किये और तब विदुषी रमा बी० ए० से शादी की। इसी पिछले ही साल की तो बात है। और बात भी कितनी दर्दनाक है! जुलाई १९४७ मे जो हमारा जीवन-सम्बन्ध हुआ, सो अगस्त १९४७ के अन्त तक भी सकुशल न रह सका। इसलिए नहीं, कि हम दोनों मे पारस्परिक सद्भावना की कमी थी। इसलिए नही, कि किसी तरह का अभाव था। सिनेमा की कमाई चकाचक। आपको सुनकर ताज्जुब होना चाहिए कि उल्फतराय, 'वफ़ा' इसलिए मारा गया कि स्वराज्य हो गया। देश का निर्मम बँटवारा होते ही लाहौर मे अराजकता फैली ऐसी

जिसका कोई हदोहिसाब नहीं। मेरी गृहस्थी तो पहले ही थपेड़े मे उजड़ गई। मुझे अच्छी तरह याद है, हम दोनों सिनेमा से लौट रहे थे। मैटनी शो देखकर, डेढ़ बजे। और सरेआम हमारी टैक्सी रोककर गुण्डों ने मेरे देखते-देखते मेरी प्रिय पत्नी रमा को बाहर खींच लिया। विरोध करने पर मेरे मुँह पर कसकर थप्पड़ मारते हुए एक पंजाबी मुसलमान ने कहा—

"हँस के लिया है पाकिस्तान . । अब क़ाफिरों के दामाद हैं हम—अहले इस्लाम।"—यह तो कहिये थप्पड़ खाते ही मुझे अकल आ गयी, औरत को छोड़, मोटर को तेज़ भगाकर मैंने जान बचाई। फिर तो मैं ऐसा होशियार बन गया जैसे दूध की जली बिल्ली। घर-जर सभी रामभरोसे छोड़ सीधे अमृतसर की तरफ़ सरका और परमात्मा की कृपा से दुश्मनों के चंगुल से निकलकर दोस्तों को मण्डली में पहुँचा।

तब शान्तिपूर्वक सोचने का मौका मिला कि, रमा के लिए क्या किया जाय। किया ही क्या जा सकता है? थाने मे रिपोर्ट लिखाना और छापेखाने में खबर छपवाना। सो दोनों ही मैंने मुस्तैदी से कर दिये थे। अब सिवा ग़म खाने के अक्लमंदों के लिए दूसरा चारा नहीं था। सो साहब, नवविवाहिता, नौजवान, विदुषी पत्नी के लुट जाने पर मैं ग़म खाकर बम्बई लौट आया। और महीनों उदास रहा। जैसे बालक खिलौना गुम जाने से। लेकिन फ़िल्मी-दुनिया में न तो बालाओं की कमी, न विदुषियो की न खिलौनों की। और दिल अपना 'मानोटनी' या एक रास्ता से घबराने वाला। सो, उलझा दिया साले को मिस नर्गिस की जुल्फों में, मगर दिल मेरा सोने में मढ़ा हुआ हीरे का फन्दा नहीं कि वह उसे जुल्फों मे टिका, सर पर चढ़ाकर रखती। उसने तो मेरे दिल को जूओं की तरह हाथी-दांती कंघे से झाड़कर बाहर कर दिया।

नर्गिस भले न मिली हो, पर मुहब्बत की 'बैटरी' मेरी 'चार्ज'

हो गयी। मैं इधर-उधर सिनेमा-परियों की राह में दिल फेंकने या बिछाने लगा। और मैं एक अदा का सुकवि कलाकार जब विश्व-विजयिनी कला के बल पर एक छोकरी फँसाने पर तुल गया, तो बाज़ार में हमेशा बकरे के बदले मे बोटी सुलभ सरासर। फँसी कमला, एक नई चिड़िया, कर्नाटकिन, मगर जिस दिन वह मेरे प्रेम (या मोह?) जाल मे आई उसी दिन उसी के सामने अमृतसर से एक तार आया। जिसमें लिखा था—

"रमा का पता लगा—फौरन आओ!—कुन्ती।"

"यह कुन्ती कौन?"—कमला कर्नाटकिन ने तार सुनकर पूछा।

"कुन्ती जी नारी-उद्धारक दल की नेत्री है।"—मैंने बतलाया।

"तो आप जायेंगे अमृतसर?"—उसने पूछा।

"ज़रूर। रमा मेरी कविता की जान है, ख़ानदान की शान है।"—मैंने स्पष्ट कहा।

"हिन्दू की औरत!"—कमला ने जले-स्वर से जवाब दिया, "आठ महीने गुण्डे पठान के घर पर रहकर आवेगी, तो खानदान की शान ज़ुबान-ही-ज़ुबान नहीं तो और क्या...?"

"रमा जीवित है, तो बा-आबरू ही होगी। वह औरत ऐसी नहीं, कि बे-आबरू ज़िन्दा रह जाये।"—मैंने सहज भाव से कहा।

"वह औरत 'ऐसी' नहीं कि क्या मानी?—हम-जैसी नहीं?" रमा की चर्चा मे कमला कर्कश हो चली।

"यह तो मैंने नहीं कहा।"

"मैं यह कहती हूँ।"—नागिन की तरह मुझसे दूर सरकती कमला बोली, "वह तुम्हारी रमा अगर नवेली नौजवान है, तो उसे वैसे ही अपमानित किया गया होगा जैसे किसी भी मामूली औरत को।"

"मामूली नहीं मेरी रमा असाधारण महिला है।"—बिना

किसी अतिशयोक्ति के मैंने कहा।

"माना—पर बहेलिये को जैसे कॉच और हीरे का भेद मालूम न होता, वैसे ही बर्बर नर साधारण और असाधारण औरत में कोई फर्क नहीं देखता। जा कर जनाब जब देवी जी की शक्ल देखेंगे तब सच्चाई आँखो के आगे नाचने लगेगी ताथेई, ताथेई।

और भविष्यवाणी दैवज्ञ ज्योतिषी ही नहीं, फिल्म की नटनी भी कर सकती है। इसका पता चला मुझे अमृतसर आने पर, रमा देवी की शक्ल देखने और उनका भाषण सुनने पर।

अमृतसर पहुँचने पर कुन्ती देवी ने बतलाया कि सीमा के पास के एक ग्रामीण पठान के घर से चार हिन्दू औरते पाकिस्तानी सरकार की मदद से बड़ी मुश्किल से महीनो मे बरामद हुई हैं। बड़ी मुश्किल से यो कि वह पठान एक भी औरत देने को तैयार नहीं था। इतना ही नहीं, एक भी औरत उसे छोड़कर आने को राज़ी नहीं थी।

मैंने पूछा—"रमा देवी भी ?"

कुन्ती ने जवाब दिया, "रमा देवी तो और भी सबसे ज्यादा उस पठान की तरफ़...।"

"मेरी पत्नी के प्रति ऐसे आरोप लगा मेरा अपमान कर रही है कुन्ती जी ! मुझे विश्वास नहीं आपके कथन का ।"—मैंने कहा।

"आपकी पत्नी होती, तो पठान के घर कैसे बरामद होती।"—कुन्ती ने गंभीरता से पूछा और उत्तर की प्रतीक्षा किये बग़ैर बोली,—"हाथ कंगन को आरसी क्या—आप खुद चलकर जान-सुन लें कि रमा देवी किसकी पत्नी है। चार औरतों मे से तीन के पति या रिश्तेदार भी आये हुए है। एक के शायद कोई नहीं है। सब साथ ही वहाँ क्यो न चले जहाँ पर वे औरतें है। मुझे खुशी होगी उल्फ़तराय जी अगर चारों औरतें अपने-अपने घर लौट जायँ। पर

मुझे शक है...।"

"शक कैसा ?"

"दो को गर्भ है, मालूम नहीं उनके रिश्तेदार ..!"

"गर्भ ? रमा को ? ." सहसा मेरे मुँह से निकल गया।

"रमा देवी को नहीं,"—कुन्ती ने गम्भीरता से कहा, "पर जिन्हे है वे भी अपने-अपने घर की रमा ही है, मेरी आँखो मे।"

खैर साहब, हम पहुँचे वहाँ जहाँ चारों देवियाँ थीं—पाकिस्तानी पुलिस और सैनिको के पहरे मे। तय पाया कि एक-एक औरत हमारे सामने लाई जाय और फिर उससे पूछा जाय कि वह अपने घर जाना चाहती है या जहाँ है वहीं रहना। पहले हिसार के एक बनिये की स्त्री पेश की गयी जो देखते ही दुखी, रुग्णा और गर्भिणी नज़र आयी। देखते ही बनिये ने नाक-भौ चढ़ाकर कहा—

"यह तो नष्ट हो चुकी है! इसे कोन समाज मे रहने देगा ? यह पाकिस्तान मे ही चाण्डाल पैदा करे, तो अच्छा, मैं इसे लेने वाला नहीं।"

"फिर भी ."—कुन्ती देवी ने उस भीत, लज्जित नारी को बढ़ावा दिया, "सेठ जो तुम्हारी ज़िम्मेदारी नहीं लें, तो सरकार लेगी। चाहोगी तो तुम्हारा दूसरा ब्याह कर दिया जायगा। पर क्या तुम अपने घर लौटना चाहती हो ?"

उसने कहा, "नहीं, मैं पाकिस्तान मे ही रहूँगी। चार दिन की यह ज़िन्दगी अपमानो मे बिताने के लिए हिन्दुस्तान कौन जाय ?"

दूसरी औरत जो पेश की गयी थी वह खजूरपुर के जाट की बीवी। पेट उसे भी था पर हिसार की बनियाइन की तरह खजूरपुर की जाटिन दुर्बल नहीं, दुखी नहीं और दबैल भी नहीं। उसने कहा—

"मुझे पठान जी-जान से चाहता है और यह आदमी रोज़ मुझे डण्डों से पीटता था। मैं इसके घर जाने से मर जाना बेहतर समझूँगी।"

जाट ने कहा, "चलना पड़ेगा—ले चलूँगा मार जूतों!"

इस पर पाकिस्तान के उपस्थित अधिकारी ने आपत्ति करते हुए कन्ती देवी से कहा—कि दबाव डालकर किसी को खींचना ठीक नहीं। कुन्ती देवी ने उत्तेजित जाट को शान्त किया।

तीसरी औरत अधेड़ उम्र से भी पार की ब्राह्मणी—वह सामने आते ही रोने लगी—

"सरकार! मैं इस पापी चाण्डाल के यहाँ कपिला गाय की तरह सतायी जा रही हूँ . । मैं ब्राह्मणी—म्लेच्छ के लिए अशुद्ध माँस पकाती हूँ—मज़दूरिन बनाकर वह मुझे रखता है, झाड़-बहारू से लेकर भंगिन तक का काम कराता है। पापी मुझे आदमी नहीं, पशु समझता है। देखो, देखिये!"

उसने आवेश में अपने सीने तक का वस्त्र उघाड़ दिया—चारों तरफ़ गोदने गुदे हुए, अक्षरों में—"पाकिस्तान जिन्दाबाद!"

ब्राह्मणी के सीने पर, कण्ठ पर, कपोलों पर!!

"तुम्हारा हिन्दुस्तान में कोई नहीं है बहन? घबराओ नहीं।" —कुन्ती देवी ने सांत्वना दी।

"मेरे जो भी थे, वे रावलपिंडी मे मार डाले गये—अभागिन मैं—तभी तो यह अपमान...!"

"ऐसा नहीं, बहन!"—कुन्ती देवी बड़ी ही सहृदयता से बोली,—"तुम्हारे तीस करोड़ अपने—अपना सारा भारतीय संघ। तुम निरपराधिनी—हमारी राजनीतिक, भूलों की शहीद, तपस्विनी सती हो। तुम्हें त्यागने से राष्ट्र का विनाश हो जायगा। तुम अखिल भारत मे जहाँ चाहो वहाँ रहो।"

लेकिन रमा रमणीय! ज्यों-की-त्यों! निर्मल जल के बाहर

कमलनी-सी हमारे सामने आयी। अगली तीनों औरतें पठानी पोशाक में थीं, बुर्के के साथ, पर, रमा भारतीय साड़ी ही पहने थी। उसे देखते ही मैं कमान से तीर की तरह छूटकर सीने से मिलने को सनका; पर, वह घृणा से एक ओर मुड़कर खड़ी हो गयी—

"दूर रहो!"—तड़पकर उसने कहा, "तुम कायर हो! महाशय उल्फतराय! मेरी तरफ मत सनको! अब मैं तुम्हारी कोई नहीं। तुमसे लाख बार भला है वह पठान। उस पठान ने एक-दो सिपाहियों की जान ले ली तब हम आपके कब्ज़े में आयी हैं। इधर गुण्डों ने मुझे स्ववश करना शुरू किया इनके सामने और पाँच लाख बार प्राणेश्वरी कहने पर भी यह साहब ऐसे बैठे रहे गोया मेरा-इनका कोई रिश्ता ही न था! उधर गुण्डे मुझे नोचने लगे, इधर हज़रत मोटर लेकर नौ-दो-ग्यारह हो गये। जिस वक़्त यह शख्स कायरों की तरह भागा उसी वक्त मैंने मुसलमान हो जाने का निश्चय किया। पर जल्दी में मैं नहीं थी। पठान से मैंने एक साल की मुहलत माँगी। यह सोचने के लिए कि मैं मुसलमान हो जाऊँ या नहीं। अभी साल पूरा होने में दो-तीन महीने की देर है, पर मेरे मुसलमान बनने मे कोई देर नहीं। क्योंकि जब पठान से साल भर की मुहलत मैंने ली थी, तो विश्वास था कि इसी बीच भारतीय-संघ हमारा उद्धार कर लेगा। पर अब मज़े मे देख चुकी, किसी को दुखियारी नारियों की फिक्र नहीं। एक सीता पर लंकाकाण्ड हुआ, एक द्रोपदी पर महाभारत; पर, आज लाख-लाख सतियाँ चाण्डाल आतताइयो के कलंक ढो रही हैं और नेताओं, भविष्य-चेताओं को दफ्तरी-बस्तों से फ़ुरसत नहीं। अबलाओं का उद्धार होगा तब जब उनकी आत्मा का गौ-हनन हो जायगा। अच्छी तरह से भारत की सुकुमारियाँ, कुलवधुएँ दो-दो टके बिकीं! और अब क्या देखना बाकी है जो कोई भली औरत हिन्दू घर में रहना चाहेगी? आज जिसकी लुगाई मुसलमान उठा

ले जाता है, कल रूसी ले जायेगा, परसों अमरीकी। हम औरतों को मर्द चाहिए न कि नामर्द। जिसकी औरत टके सेर बिक जाय उसे हम क्या कहें? आप क्या कहते है? क्या कहेगे—मर्द? देखती हूँ मर्दों की मर्दानगी कायम रखने के लिए मर्द की परिभाषा नयी गढ़नी पड़ेगी।"

रमा देवी भरी हुई छ-नली पिस्तौल-सी, "अर्द्धांगिनी पर बेइज्जती का बज्रपात हो और उल्फतराय लिखे फ़िल्मी गाने! मैं कहती हूँ—और समस्त नारी समाज की ओर से कह सकती हूँ—लानत! लाख-लाख लानत!! और"

"उत्तेजित न हो बहन!"—गम्भीर-मुखी कुन्ती देवी ने कहा, "एक पुरुष की ग़लती के लिए अपना देश, धर्म, संस्कृति छोड़ देना ही क्या सही कदम होगा?

"नहीं तो। यह कौन कहता है?"—सँभलती हुई रमा देवी ने कहा, "आवेश मे मेरे मुँह से ग़लत बात निकल गई हो, तो मुझे माफ़ किया जाय। मैं समझती हूँ कि मक्खन के पैकेट की तरह औरत की भी कोई जाति, धर्म, संस्कृति या देश नही। आज के मर्दों के सामने वह केवल भोग की वस्तु है—निष्प्राण। उसके भी दिल होगा, कहाँ सोचता है पुरुष विश्व का शासक कापुरुष यह। मैं कहती हूँ, नारी साग-भाजी या बकरी की अम्माँ से बेहतर जीवन चाहती है, तो उसे विद्रोह करना होगा। मैं इस अधम उल्फ़तराय का मुँह नहीं देखना चाहती। कुन्ती जी अगर आप मुझे भारत ले जाना चाहती है, तो पहले इस फ़िल्मी-कलन्दर को बम्बई का टिकट कटा हरी झंडी दिखाइये।

और वह अड़ोली अटल रही। अपने निश्चय पर, मैं टके-सा मुँह लिये लौट आया।

और एक दिन गुजराती 'जन्मभूमि' में पढ़ा कि रमा जी, बी० ए०, कुन्ती देवी को सहायिका बनकर नारी-उद्धार कार्य मे लग गयी हैं।

"माता जी को कोई रोग नही, बीमारी नहीं," एकांत में केवल चन्द से बातें करते हुए खुशामदाना स्वर मे घीसालाल ने पूछा, "मेरी समझ मे नहीं आता कि यों, अचानक, उनका वैकुंठ-गमन हो कैसे गया !"

"रोज़ यह एक ही प्रश्न आप करते हैं घीसालाल जी ! और मैं मन मसोसकर चुप रह जाता हूँ। पर आज उत्तर देने को जी चाहता है।"

इधर-उधर देख और अच्छी तरह से समझकर कि कोई नौकर भी उसकी बात सुनने को नज़दीक नहीं, एम एल. ए केवलचन्द ने कहा, "तेरह दिनो पहले आपसे जो पचास हज़ार रुपये मुझे मिले वे फले नहीं। तेरह दिनों में मै इसी उधेड़-बुन में हूँ कि क्या अम्माँ का शरीर उन रुपयों के कारण ही छूट गया ? क्या ये रुपये उत्थान नहीं, वे पतन के अग्रदूत, ऊरूज नहीं, ज्वाला की राह पर झाड़ू लगाने वाले है ?"

"मैं समझा नहीं महाराज !"—पुनः चापलूसी की घीसालाल ने। "मैंने तो गुरु-मन्त्र यही माना है कि फ़ायदे में आती हुई लक्ष्मी में, फिर वह लाभ चाहे जैसे होता हो, कोई भी पाप नहीं, ज़रा भी। यही रुपये अंग्रेज़ ले जाता तो पुण्य होता और आप की जेब में गये तो पाप हो गया ! हिः ! मैं तो सौभाग्य मानता हूँ और अंग्रेज की सेवा आधे दिल से करता था तो आपकी सेवा सौ जान से करना चाहता हूँ। आप स्वदेशी, आप तपस्वी, आपको रुपये देना और मन्दिर में चढ़ाना बराबर है। मन्दिर में किसी तरह का भी रुपया चढ़ाया जा सकता है। ताज्जुब है! रुपयों से माता जी के देहान्त का सम्बन्ध क्योंकर हो सकता है ?"

"आप मेरी माँ को निकट से जानते नहीं घीसालाल जी, दया और त्याग की तो वह मूर्त्ति थीं। उनके उठ जाने से मेरे जीवन में जो अवकाश उत्पन्न हो गया है उसकी पूर्ति इस जन्म

मे सम्भव नहीं।"

"माताऍ मोही होती ही है।"—घीसालाल ने कहा, "मेरी माता कपूरा बाई आख़िरी-दम ही तक भगवान से यही प्रार्थना करती गईं कि मेरे घर मे लक्ष्मी जी टांग तोड़कर बैठी रहे। और साहब, उनके आशीर्वाद मे कितना बल ! जिस साल वह मरीं उसके दूसरे ही साल बंगाल मे अकाल पड़ा था। उधर अकाल पड़ा इधर कलकत्ते की 'घीसालाल घनघोरलाल' फ़र्म ने बंगाल के बाहर पचास गुने अधिक दाम पर कई लाख मन चावल खपाकर पचास लाख रुपये पैदा किये।"

"मेरी माता बड़ी धर्मात्मा..."—केवलचन्द ने भावुकता से भरकर कहा, "दयावती उनका नाम ज़रूरत से ज्यादा सार्थक। जीवनभर उनकी बड़ी-बड़ी ऑखे जीवनभरी रहीं यानी सहज-सजल। माता जी का चेहरा हमेशा ऐसा दिखता गोया प्रसन्नता से रोकर अभी उठी हो। पिता जी की डाक्टरी से बड़ी अच्छी आमदनी, पर वह आमदनी से इतनी ख़ुश नहीं जितना इस बात से कि पिता जी आर्यसमाज के भारत-विख्यात सुधारक नेता थे। मै अम्मॉ के मुँह से सुनी उनके पसन्द की बात बतलाऊँ, तो स्पष्ट हो जायगा कि मेरी मॉ किसी बुलन्द मिज़ाज की थीं।

"मेरी डाक्टरी पिता जी से भी बढ़कर चली। रुपये बरसने लगे। पर इससे अम्मॉ खुश नहीं हुईं। सन् '४२ मे जब मैं ब्रिटिश गवर्नमेंट के विरुद्ध बग़ावत कर जेल मे जाने के बाद, ६८ दिन अनशन करने के बाद, अधमरा-सा, मरने के लिए छुटकर घर लाया गया और मुझे देखने के लिए सारा शहर उमड़ पड़ा, मसजिदों और मन्दिरों मे दुआऍ-प्रार्थनाऍ होने लगी, तब वह मेरे पास आईं। उन्होने कहा—"११ रुपये हैं ? चाहिएँ।"

"रुपये क्या होगे अम्मॉ ?"—उन्हे दस और एक के नोट देते हुए मैंने पूछा।

"हनुमान जी को लड्डू चढ़ाकर बच्चों को बाँटूँगी।"

"क्यो ?"

"मैंने मानता की थी तेरे लिए।"

"मेरे लिए क्यों ? कब ?"

"जब तू पेट मे भी नहीं आया था।"

"ऐसी मेरी अम्माँ जिसने मेरे पेटमें आने से पहले ही मनौती मान रखी थी। क्या मनौती थी माँ !"

"उसका क़िस्सा है।" अम्माँ ने पुलकित होकर सुनाया, "तेरे पिता आर्यसमाज के बड़े लीडर, बड़े ही कट्टर सुधारक। अपनी ज़िन्दगी में उन्होंने १,१०० मुसलमानों को शुद्ध कर हिन्दू धर्म में मिलाया था। इससे कुढ़कर एक पागल मुसलमान ने उन पर छुरे से दस वार किये। उस वक़्त वह न रोकते, तो कानपुर में ख़ून की नदी बह गई होती। और मरहम-पट्टी से सजकर जब वह घर पर आये तो सारा शहर उन्हें देखने को उमड़ पड़ा। जिधर सुनो उधर प्रशंसा तुम्हारे पिता की। और मैं आर्यसमाज मे नहीं, मैं तो पुराने ढंग की सीधी आदमी, पर तुम्हारे पिता का वह गौरव देखकर मेरा हृदय गर्व से फूल उठा। मैंने आँचल पसारकर, इष्टदेव हनुमान का ध्यान कर मनौती मानी कि हे पवन-पूत, राम-दूत ! जिस तरह आज मेरे पतिदेव का ऊरूज़ है, वैसे ही जिस दिन मैं अपने पुत्र का ऊरूज़ देखूँगी उस दिन आपको बेसन के लड्डू और चोखे चने चढ़ाऊँगी। वह दिन आज हनुमान जी ने दिखा दिया, सो लड्डू और चने चढ़ाकर बच्चों को बाँटूँगी।"

"बड़े ही वीर विचारों की आपकी माता थीं।"—घीसालाल ने गम्भीरता से कहा—"मगर उन रुपयों की असलियत का भेद उन्हें बतलाया ही आपने क्यों—उनका स्वभाव जानते हुए ?"

"मैंने नहीं बतलाया उन्हें"—केवलचन्द ने कहा, "मैंने अपनी

पत्नी के सामने सारी रक़म रखकर कह रहा था कि उससे एक बढ़िया बॅगला बनवाना है कि उसी वक़्त कहीं से अम्मॉ जी वहाँ आ गयीं। इतनी बड़ी रकम वहॉ एकाएक सामने देख उन्हें ताज्जुब हुआ। 'बाबू' उन्होने बचपन के नाम से मुझे संबोधित कर पूछा, इतने सारे रुपये कहॉ से आये ?

"मैंने बाते बनायीं बूढ़ी के सामने। अम्मॉ जी, लक्ष्मी को जब आना होता है तब नारियल की खोपड़ी के अन्दर पानी की तरह जानें कैसे आ जाती है?"

"जाने कैसे आई हुई लक्ष्मी को गृह-लक्ष्मी बनाना हमारे विचारो से पाप माना जाता है। डाक्टरी मे इतने रुपये मिलते तो मैंने कभी देखा नहीं। यह आये कहॉ से ?"

"मैं एम. एल ए. हो गया हूँ न, शहरभर के व्यापारियो की नकेल मेरे हाथ मे आ गयी है। अब मैं ग़रीब नहीं रह सकता। यह तो आधा ही लाख है, अभी लाखो और आयेगे।"

जैसे वह समझ गयी कि रुपया नाजायज़ तरीक़े से हासिल किया हुआ है। उन्होंने आर्डर दिया कि उसी वक़्त जिसकी चीज़ उसके हवाले की जाय। ऐसा धन घर मे रखना पेटियो में सॉप पालने के समान है।

"इससे नया बँगला बनेगा अम्मॉ! यह पाप की नहीं तेज की कमाई है। इतने दिनो तक देश के लिए तप किया है फिर फल नहीं मिलेगा ? तुम्हारा धर्म-ज्ञान दकियानूसी, जो केवल त्यागना, देना ही जानता है। दुनिया का कर्म त्याग और ग्रहण दोनों में संतुलन रखने से ठीक चलता है। एम. एल. ए. हुए हैं, दरिद्र की तरह पॉव पटकते रहेगे तो कुछ भी नही होने का। और बॅगला और मोटर हो जायगी तो आगे मिनिस्टरी के चांस हैं।"

"सेवा, त्याग, तप से जैसे एम. एल ए. बना है क्या वैसे ही सेवा, त्याग और तप से मिनिस्टर भी नहीं बन सकता। पढ

लिखकर तूने समझा क्या ? मै तो बिना पढ़े-लिखे जानती हूँ कि केवल राम-राम करने से आदमी इन्द्र-पद भी पा सकता है।" अम्माँ ने मेरे लोभ के विरोध मे तीक्ष्ण स्वर मे कहा।

"धीरे बोलो अम्माँ, चिल्लाती क्यों हो ?"—रुखाई से मेरे मुँह से निकला, "मै एम. एल. ए. हूँ, मेरी भी इज्ज़त है, कोई सुने तो तिल का ताड़, राई का पहाड़ खड़ा हो जाय। आज की राज-नीति मे पाप करना बुरा नहीं, पकड़ा जाना-मात्र बुरा है। बुराई बुरी नही, बदनामी बुरी है। आप लोग पुराने ज़माने की राम-रट लगाएँ, पर राम-नाम लेने से इन्द्रासन तब मिलता है जब गांधी जी की तरह गोली खाकर पहले जान दे दे।"

इस पर अम्माँ चुप हो रहीं, एक बार मेरी ओर बड़ी-बड़ी आँखों से यूँ देखकर जिसका अर्थ यह कि—"अच्छा रे, मेरे पेट का पैदा हुआ मुझे ही ज्ञान सिखाने चला है।" और वह तेज़ी से हमारे कमरे के बाहर हो गयीं। रुपये का मोह महा था ? मेरी मूर्खता थी कि मैंने अम्माँ की नाराजी पर ध्यान नही दिया और दूसरे कामों के सिलसिले मे शहर चला गया। लौटा भी देर से, सवा बारह बजे।

"और देखता क्या हूँ कि अम्माँ चौकी पर तड़प रही है, सारा घर सेवा मे लगा है। स्त्री से बुलाकर मैंने पूछा, क्या हुआ अम्माँ जी को ? कब से यह हालत है उनकी ?

"यह हालत तो अभी १५-२० मिनिटसे है।" स्त्री ने बतलाया—"पर हमारे कमरे से बाहर निकलते ही, तुम्हारे बाहर जाते ही, वह बहुत ही बेकल बन गयी थीं।'

"कुछ कह रही थीं ?"

"आदमी से कुछ भी नहीं, वह घर के पूजा गृह मे जाकर देवता के सामने हिचक-हिचककर, पुक्का फाड़कर ? रोने और सिर पीटने लगी थीं।"

"क्या ?"

"उन्होंने कहा—हे प्रभो ! क्या यही दिन देखने के लिए मैंने तुम्हारी इतनी सेवा की थी ? पर मैं ही पापिनी हूँ भगवान ! तुम्हारा कोई दोष नहीं । अपराध मेरा, मैंने माना । लेकिन अब तो दया करो नाथ ! अब तो दया करो ! जब माता-पिता की नीयत और बुद्धि पर लड़के सन्देह करने लगें तब भाग्यवान सो, जिसे भगवान नहीं, तो यमराज ही सही, बुला ले ।"

पत्नी जिस ठंडे दिल से कथा सुना रही थी मुझे अच्छा नहीं लगा, या यों कहिये कि अपनी कमज़ोरी का परिणाम सामने आते देख गुस्सा आया औरत पर । मैंने पूछा—

"वह सर पीटती रहीं और तुम सिनेमा के तमाशे देखती रहीं—ऐं ?"

"मैं करती क्या, उन्होंने अन्दर से कुण्डी लगा रखी थी । तब से बराबर तो मैं बाहर से माँजी, माँजी ! पुकारती रही हूँ । थोड़ी देर पहले दरवाज़ा खोलकर वह बाहर आयीं । मैंने देखा—ऐसा तो मैंने उनका रूप कभी देखा ही नहीं था—साक्षात भगवती ! चेहरे से जैसे लपट निकल रही थी । 'बहू'—उन्होंने कहा—'मेरी तबीयत अच्छी नहीं, देह जैसे ऐंठी जा रही है । दिल जैसे डूबा जा रहा है । वे रुपये घर में है न ?' उन्होंने कठोर स्वर से पूछा—और मैं चुप रही ! और वह कटे रूख की तरह गिर पड़ीं, हाथ-पाँव ऐंठने लगे ! हम सब ने मिलकर उन्हें चौकी पर लिटाया ही था कि तुम आये । पर, बातें फिर होंगी, पहले कोई डाक्टर-वैद्य ।"

इसी समय चौकी के पास से घर के दूसरे लोग चीख़-चिल्ला पड़े—'दौड़ो !—अम्माँ जी' और जब तक हम पहुँचे तब तक वह मृत्युलोक का वातावरण छोड़ दिव्यलोक की सीमा में पहुँच चुकी थीं ।

"भाग्यवान् थीं माता जी !"—घीसालाल ने किस्सा कोता करने के इरादे से कहा, "अनायास-मरण बड़ा उत्तम माना जाता है। फिर अब उन्हे देखना ही क्या था ? पति का उरूज़ देखा, उससे भी बढ़कर पुत्र का उरूज़ भी देखा।"

"मगर सेठ जी " केवलचन्द के मुँह से भावावेश मे सत्य निकल पड़ा, "पति का उरूज़ देखने से अम्माँ को एक नयी ज़िन्दगी का सन्देश मिला था और पुत्र का उरूज़ देखने से दाहक-मरण का। तभी से बराबर यही विचार मेरे माथे में प्रेत-ताण्डव कर रहा है कि क्या अम्मा की मृत्यु का कारण वह रक़म नहीं है ? अगर है, तो इस हत्यारी-सम्पत्ति से सिवा सर्वनाश, मृत्यु और नरक के दूसरा होगा क्या ?"

"अपना नया बँगला जो बनेगा उसका नाम माता जी के नाम पर हो—'दयावती-निवास' या 'दया-धाम'। राजनीति-निपुण होकर आप भी कहाँ के भावुक बन चले। अजी, माता जी ने आपके उरूज़-सूर्योदय की हल्की लाली देखी थी, पौ के तो अब बारह होने वाले हैं। प्रकाश तो अब फूटने वाला है। पचास हज़ार भैया जी, 'वार' के बाद पचास हज़ार तो चमार-सियार के पास हो गये हैं। आजकल हम-आप-जैसे ग्रहस्थ के पास दस-पाँच लाख रुपये भी अगर नहीं हुए, तो सिवा रोटी-कपड़े के ऊँचे विचार सूझेंगे कहाँ से ?"

"ऊँचे विचार ? दस-पाँच लाख ! विचारों से लाखों का क्या सम्बन्ध सेठ जी ?"

"बहुत !"—घीसालाल ने सुनाया, "आप-जैसे बुद्धिमान् आदमी को बतलाना, कि यह आर्थिक-युग है न कि आध्यात्मिक, धृष्टता होगी। आप क्षमा करें। एम. एल. ए. बावन गंडे होंगे, पर पूँछ उन्हीं की है, उरूज़ उन्हीं का, जिनके पास चकाचक माल है। मैं झूठ कहता हूँ ?"

और देश भक्त एम. एल ए. चुप रहा, पर उसके चेहरे पर यह भाव कि मालदार आदमी और खूबसूरत माशूक के मुँह से भूठ भी सच मालूम पड़ता है।

बकौल उस्ताद 'ग़ालिब'—

कहा तुमने कि क्यों हो गैर से मिलने में रुसवाई ?
बजा कहते हो, सच कहते हो, फिर कहियो कि हाँ क्यों हो ?

७

उसकी माँ

दोपहर को ज़रा आराम करके उठा था। अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में खड़ा-खड़ा धीरे-धीरे सिगार पी रहा था और बड़े-बड़े अलमारी मे सजे पुस्तकालय की ओर निहार रहा था। किसी महान लेखक की कोई महान कृति उनमे से निकालकर देखने की बात सोच रहा था। मगर, पुस्तकालय के एक सिरे से लेकर दूसरे तक मुझे महान-ही-महान नज़र आये। कही गेटे, कही रूसो, कहीं मेज़िनी, कहीं निट्शे, कहीं शेक्सपियर, कहीं टाल्स्टाय, कही ह्यूगो, कही मोपासां, कहीं डिकिन्स, स्पेन्सर, मेकाले, मिल्टन, मोलियर उफ! इधर से उधर तक एक-से-एक महान ही तो थे! आख़िर मैं किसके साथ चन्द मिनट मन-बहलाव करूँ, यह निश्चय ही न हो सका, महानों के नाम ही पढ़ते-पढ़ते परेशान सा हो गया।

इतने में मोटर की भों-भों सुनायी पड़ी। खिड़की से झाँका तो सुर्मई रंग की कोई 'फिएट' गाड़ी दिखाई पड़ी। मैं सोचने लगा—शायद कोई मित्र पधारे है, अच्छा ही है। महानो से जान बची।

जब नौकर ने सलाम कर आने वाले का कार्ड दिया, तब मैं कुछ घबराया! उस पर शहर के पुलिस सुपरिंटेन्डेंट का नाम छपा था। ऐसे बे-वक़्त यह कैसे आये।

पुलिस-पति भीतर आये। मैंने हाथ मिलाकर एक चक्कर खाने वाली गद्दीदार कुर्सी पर उन्हे आसन दिया। वह व्यापारिक मुस्कराहट से लैस होकर बोले .

"इस अचानक आगमन के लिए आप मुझे क्षमा करे।"

"आज्ञा हो !"—मैंने भी नम्रता से कहा।

उन्होने पाकेट से डायरी निकाली, डायरी से एक तस्वीर .. "देखिये इसे, ज़रा बताइये तो, आप पहचानते है इसको ?"

"हॉ पहचानता तो हूँ।"—ज़रा सहमते हुए मैंने बताया।

"इसके बारे मे मुझे आपसे कुछ पूछना है।"

"पूछिये।"

"इसका नाम क्या है ?"

"लाल ! मैं इसी नाम से बचपन ही से इसे पुकारता आ रहा हूँ। मगर, यह पुकारने का नाम है। एक नाम कोई और है. सो मुझे स्मरण नही।"

"कहॉ रहता है यह ?"—सुपरिंटेन्डेंट ने पुलिस की धूर्त-दृष्टि से मेरी ओर देखकर पूछा।

"मेरे बॅगले के ठीक सामने एक दोमंजिला, कच्चा-पक्का घर है, उसी मे वह रहता है। वह है और उसकी बूढ़ी मॉ।"

"बूढ़ी का नाम क्या है ?"

"जानकी।"

"और कोई नही है क्या इसके परिवार मे ? दोनो का पालन-पोषण कौन करता है ?"

"सात-आठ वर्ष हुए, लाल के पिता का देहान्त हो गया। अब उस परिवार मे वह और उसकी माता ही बचे है। उसका पिता जब तक जीवित रहा, बराबर मेरी ज़मीदारी का मुख्य मैंनेजर रहा। उसका नाम रामनाथ था। वही मेरे पास कुछ हज़ार रुपये जमा कर गया था, जिससे अब तक उनका खर्चा चल रहा

है। लड़का कॉलेज में पढ़ रहा है। जानकी को आशा है, वह साल-दो-साल बाद कमाने और परिवार को सँभालने लगेगा। मगर क्षमा कीजिए, क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि आप उसके बारे में क्यों इतनी पूछताछ कर रहे हैं?"

"यह तो मैं आपको नहीं बता सकता, मगर इतना आप समझ लें, यह सरकारी काम है। इसीलिए आज मैंने आपको इतनी तकलीफ दी है।"

"अजी, इसमें तकलीफ की क्या बात है! हम तो सात पुश्त से सरकार के फरमाबरदार हैं। और कुछ आज्ञा ..."

"एक बात और..." पुलिस-पति ने गम्भीरता से, धीरे से कहा, "मैं मित्रता से आपसे निवेदन करता हूँ, आप इस परिवार से ज़रा सावधान और दूर रहें। फ़िलहाल इससे अधिक मुझे कुछ कहना नहीं।"

● ●

"लाल की माँ!"—एक दिन जानकी को बुलाकर मैंने समझाया, "तुम्हारा लाल आजकल क्या पाजीपना करता है? तुम उसे केवल प्यार ही करती हो न! हूँ! भोगोगी।"

"क्या है बाबू?"—उसने कहा।

"लाल क्या करता है?"

"मैं तो उसे कोई भी बुरा काम करते नहीं देखती।"

"बिना किये ही तो सरकार किसी के पीछे पड़ती नहीं। हाँ, लाल की माँ! बड़ी धर्मात्मा, विवेकी और न्यायी सरकार है यह। ज़रूर तुम्हारा लाल कुछ करता होगा।"

"माँ! माँ!!"—पुकारता हुआ उसी समय लाल भी आया—लम्बा, सुडौल, सुन्दर तेजस्वी।

"माँ!"—उसने मुझे नमस्कार कर जानकी से कहा, "तू यहाँ भाग आई है। चल तो! मेरे कई सहपाठी वहाँ खड़े हैं, उन्हें चटपट कुछ जलपान करा दे, फिर हम घूमने जायँगे!"

"अरे!"-जानकी के चेहरे की झुर्रियाँ चमकने लगीं, काँपने लगीं, उसे देखकर, "तू आ गया लाल! चलती हूँ भैय्या! पर, देख तो, तेरे चाचा क्या शिकायत कर रहे है? तू क्या पाजीपना करता है बेटा?"

"क्या है चाचाजी?"—उसने सविनय, सुमधुर-स्वर से मुझ से पूछा, "मैंने क्या अपराध किया है?"

"मैं तुमसे नाराज़ हूँ लाल!"—मैंने गम्भीर-स्वर मे कहा।

"क्यो चाचा जी?"

"तुम बहुत बुरे होते जा रहे हो. जो सरकार के विरुद्ध षड-यन्त्र करने वालों के साथी हो! हाँ, तुम हो! देखो लाल की माँ, इसके चेहरे का रंग उड़ गया, यह सोचकर कि यह ख़बर मुझे कैसे मिली।"

सचमुच एक बार उसका खिला हुआ रंग ज़रा मुरझा गया, मेरी बातों से! पर तुरन्त ही वह सँभला।

"आपने ग़लत सुना, चाचा जी। मैं किसी षडयन्त्र में नहीं। हाँ, मेरे विचार स्वतन्त्र अवश्य है. मैं ज़रूरत-बेज़रूरत जिस-तिसके आगे उबल अवश्य उठता हूँ। देश की दुरवस्था पर उबल उठता हूँ; इस पशु-हृदय परतन्त्रता पर।"

"तुम्हारी ही बात सही, तुम षडयन्त्र में नहीं, विद्रोह में नहीं, पर यह बकबक क्यों? इससे फ़ायदा? तुम्हारी इस बकबक से न तो देश की दुर्दशा दूर होगी और न उसकी पराधीनता। तुम्हारा काम पढ़ना है। पढ़ो, इसके बाद कर्म करना होगा, परिवार और देश की मर्यादा बचानी होगी। तुम पहले अपने घर का उद्धार तो कर लो, तब सरकार के सुधार का विचार करना।"

उसने नम्रता से कहा—"चाचाजी, क्षमा कीजिये। इस विषय मे मैं आपसे विवाद करना नहीं चाहता।"

"चाहना होगा, विवाद करना होगा। मैं केवल चाचाजी

नहीं, तुम्हारा बहुत कुछ हूँ। तुम्हें देखते ही मेरी आँखों के सामने रामनाथ नाचने लगते हैं, तुम्हारी बूढ़ी माँ घूमने लगती है। भला मैं तुम्हे बेहाथ होने दे सकता हूँ। इस भरोमे न रहना।"

"इस पराधीनता के विवाद मे, चाचीजी! मै और आप दो भिन्न सिरों पर है। आप कट्टर राजभक्त, मैं कट्टर राज-विद्रोही। आप पहली बात को उचित समझते हैं—कुछ कारणों से, मैं दूसरी को—दूसरे कारणों से—आप आपना पथ छोड़ नहीं सकते—अपनी प्यारी कल्पनाओ के लिए—मै अपना भी नहीं छोड़ सकता।"

"तुम्हारी कल्पनाएँ क्या है? सुनूँ तो! ज़रा मैं भी जान लूँ कि अब के लड़के कालेज की गर्दन तक पहुँचते-पहुँचते कैसे-कैसे हवाई-क़िले उठाने के सपने देखने लगते है। ज़रा मैं भी तो सुनूँ बेटा?"

"मेरी कल्पना यह है कि जो व्यक्ति, समाज या राष्ट्र किसी अन्य व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो उसका सर्वनाश हो जाय!"

जानकी उठकर बाहर चली, "अरे! तू तो जमकर चाचा से जूझने लगा। वहाँ चार बच्चे बेचारे दरवाजे पर खड़े होगे। लड़ तू, मैं जाती हूँ।" उसने मुझसे कहा,—समझा दो बाबू, मैं तो आप ही कुछ नहीं समझती, फिर इसे क्या समझाऊँगी?"—उसने फिर लाल की ओर देखा, "चाचा जो कहे, मान जा बेटा। यह तेरे भले ही की कहेगे।"

वह बेचारी कमर झुकाये, उस साठ बरस की वय मे भी घूँघट सँभाले, चली गयी। उस दिन उसने मेरी और लाल की बातों की गम्भीरता नहीं समझी।

मेरी कल्पना यह है कि "उत्तेजित-स्वर से लाल ने कहा, ऐसे दुष्ट, नाशक, व्यक्ति, राष्ट्र के सर्वनाश मे मेरा भी हाथ हो।"

"तुम्हारे हाथ दुर्बल है, उनसे जिससे तुम पंजा लेने जा रहे

हो, चर्रर मर्रर हो उठेंगे, नष्ट हो जायँगे।"

"चाचाजी, नष्ट हो जाना तो यहाँ का नियम है। जो सँवारा गया है वह विगड़ेगा ही। हमे दुर्बलता के डर से अपना काम नहीं रोकना चाहिए। कर्म के समय हमारी भुजाएँ दुर्बल नहीं, भगवान की सहस्र भुजाओं की सखियाँ हैं।"

"तो, तुम क्या करना चाहते हो ?"

"जो भी मुझसे हो सकेगा, करूँगा।"

"षडयन्त्र ?"

"ज़रूरत पड़ी तो ज़रूर. ..."

"विद्रोह ?"

"हाँ, अवश्य !"

"हत्या !"

"हाँ, हाँ, हाँ !"

"बेटा, तुम्हारा माथा न जाने कौन किताब पढ़ते-पढ़ते बिगड़ रहा है। सावधान !"

● ●

मेरी धर्म-पत्नी और लाल की माँ एक दिन बैठी हुई बातें कर रही थीं, कि मैं पहुँच गया। कुछ पूछने के लिए कई दिनों से मैं उसकी तलाश में था।

"क्यो लाल की माँ, लाल के साथ किसके लड़के आते हैं तुम्हारे घर में।"

"मैं क्या जानूँ बाबू,"—उसने सरलता से कहा,—"मगर वे सभी मेरे लाल ही की तरह प्यारे मुझे दिखते हैं। सब लापरवाह। वे इतना हँसते, गाते और हो-हल्ला मचाते हैं कि मैं मुग्ध हो जाती हूँ।"

मैंने एक ठंडी साँस ली,—"हूँ, ठीक कहती हो। वे बातें कैसी करते हैं ? कुछ समझ पाती हो ?"

"बाबू, वे लाल की बैठक में बैठते हैं। कभी-कभी जब मैं उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने जाती हूँ, तब वे बड़े प्रेम से मुझे 'माँ' कहते हैं। मेरी छाती फूल उठती है...मानो वे मेरे ही बच्चे हैं!"

"हूँ .. .." मैंने फिर साँस ली।

"एक लड़का उनमें बहुत ही हँसोड़ है। खूब तगड़ा और बली दिखता है? लाल कहता था, वह डंडा लड़ने में, दौड़ने में, घूँसे-बाजी में, खाने में, छेड़खानी करने और हो-हो हा-हा कर हँसने में समूचे कालेज में फ़र्द है। उसी लड़के ने एक दिन, जब मैं उन्हें हलवा परस रही थी, मेरे मुँह की ओर देखकर कहा, "माँ! तू तो ठीक भारत माता-सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी। उसका उजला हिमालय है, तेरे केश। हाँ, नक़्शे से साबित करता हूँ... तू भारतमाता है। सर तेरा हिमालय, माथे की दोनों गहरी, बड़ी रेखाएँ गंगा और यमुना, यह नाक विन्ध्याचल, दाढ़ी कन्याकुमारी तथा छोटी बड़ी झुर्रियाँ-रेखाएँ भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियाँ हैं। ज़रा पास आ मेरे! तेरे केशों को पीछे से आगे बाएँ कन्धे पर लहरा दूँ, वह बर्मा बन जाएगा। बिना उसके भारतमाता का शृंगार शुद्ध न होगा।"

जानकी उस लड़के की बातें सोच गद्‌गद् हो उठी, "बाबू, ऐसा ढीठ लड़का! सारे बच्चे हँसते रहे और उसने मुझे पकड़, मेरे बालों को बाहर कर, अपना बर्मा तैयार कर लिया! कहने लगा—देख, तेरा यह दाहिना कान 'कच्छ' की खाड़ी है—बम्बई के आगे वाली, और यह बायाँ बंगाल की खाड़ी। माँ—तू सीधा मुँह करके ज़रा खड़ी हो। मैं तेरी ठुड्ढी के नीचे, उससे दो अंगुल के फासले पर, हाथ जोड़कर घुटनों पर बैठता हूँ। दाढ़ी तेरी कन्याकुमारी! हा हा हा—और मेरे जुड़े, ज़रा तिरछे, हाथ सिलोन का! हा हा हा हा! बोलो, भारतमाता की जय!"

"सब लड़के ठहाका लगाकर हँसने लगे। वह घुटने टेककर, हाथ जोड़कर, मेरे पॉव के पास बैठ गया। मैं हक्की-बक्की-सी हँसनेवालों का मुँह निहारने लगी। बाबू, वे सभी बच्चे मेरे 'लाल' हैं, सभी मुझे 'माॅ' कहते है।"

उसकी सरलता मेरी आॅखों मे आॅसू बनकर छा गयी। मैंने पूछा, "लाल की माॅ, और भी वे कुछ बाते करते हैं? लड़ने की, झगड़ने की, गोला, गोली या बन्दूक की?"

"अरे बाबू," उसने मुस्कराकर कहा, "वे सभी बातें करते हैं। उनकी बातो का कोई मतलब थोड़े ही होता है। सब जवान है, लापरवाह हैं, जो मुॅह मे आता है बकते हैं। कभी-कभी तो पागलों-सी बातें करते हैं। महीनाभर पहले एक दिन लड़के बहुत उत्तेजित थे। वे जब बैठक मे बैठकर गलचौर करने लगते हैं, तब कभी-कभी उनका पागलपन सुनने के लोभ से, मैं दरवाजे से सट और छिपकर खड़ी हो जाती हूॅ।

"न जाने कहाॅ, लड़कों को सरकार पकड़ रही है। मालूम नहीं, पकड़ती भी है या वे यों ही गप हांकते थे। मगर उस दिन वे यही बक रहे थे। कहते थे—पुलिसवाले केवल सन्देह पर भले आदमियों के बच्चों को त्रास देते हैं, मारते हैं, सताते हैं। यह अत्याचारी पुलिस की नीचता है। ऐसी नीच शासन-प्रणाली को स्वीकार करना अपने धर्म को, कर्म को, आत्मा को, परमात्मा को भुलाना है। धीरे-धीरे घुलाना मिटाना है।

"एक ने उत्तेजित भाव से कहा—अजी, ये परदेशी कौन लगते है हमारे, जो बरबस राज-भक्त बनाये रखने के लिए हमारी छाती पर तोप का मुॅह लगाये अड़े और खड़े हैं। उफ! इस देश के लोगों की हिये की आॅखें मुँद गयी हैं। तभी तो इतने जुल्मों पर भी आदमी आदमी से डरता है। ये लोग शरीर की रक्षा के लिए अपनी-अपनी आत्मा की चिता सॅवारते फिरते हैं। नाश हो

इस परतन्त्रतावाद का !

"दूसरे ने कहा—लोग ज्ञानी न हो सकें, इसलिए इस सरकार ने हमारे पढ़ने-लिखने के साधनो को अज्ञान से भर रखा है। लोग वीर और स्वाधीन न हो सकें, इसलिए अपमान-जनक और मनुष्यता-नीति-मर्दक क़ानून गढ़े हैं। ग़रीबों को चूसकर, सेना के नाम पर पले हुए पशुओ को शराब से, कबाब से, मोटा-ताज़ा रखती है यह सरकार, धीरे-धीरे जोंक की तरह हमारे देश का धर्म, प्राण और धन चूसती चली जा रही है यह लूटक-शासन-प्रणाली ! नाश हो इस प्रणाली का ! इस प्रणाली की तस्वीर सरकार का !

"तीसरा वही बंगड़ बोला—सबसे बुरी बात यह है, जो सरकार रोब से, 'सत्तावनी'-रोब से, धाक से, धाँधली से, धुँए से हम पर शासन करती है। वह आँखे खोलते ही कुचल-कुचलकर हमें दब्बू, कायर, हतवीर्य बनाती है। और किस लिए ? ज़रा सोचें तो ? मुट्ठी-भर मनुष्यों को अरुण-वरुण और कुवेर बनाए रखने के लिए ! मुट्ठी-भर मनचले सारे संसार की मनुष्यता की मिट्टीपलीत करें, परमात्मा-प्रदत्त स्वाधीनता का संहार करें—छिः ! नाश हो ऐसे मनचलों का !

"ऐसे ही अंटसंट ये बातूनी बका करते हैं बाबू। जभी चार छोकरे जुड़े, तभी यही चर्चा। लाल के साथियों का मिज़ाज भी उसी-सा अल्हड़-बिल्हड़ मुझे मालूम पड़ता है। ये लड़के ज्यों-ज्यों पढ़ते जा रहे हैं, त्यो-त्यो बकबक मे बढ़ते भी जा रहे हैं।"

"यह बुरा है, लाल की माँ !"—मैंने गहरी साँस ली।

● ●

ज़मींदारी के कुछ ज़रूरी काम से चार-पाँच दिनों के लिए बाहर गया था। लौटने पर बँगले में घुसने के पूर्व लाल के दरवाज़े पर जो नज़र पड़ी, तो वहाँ एक भयानक सन्नाटा-सा नज़र आया।

जैसे घर उदास हो, रोता हो।

भीतर आने पर मेरी धर्मपत्नी मेरे सामने उदास-मुख खड़ी हो गयीं।

"तुमने सुना ?"

"नहीं तो, कौन-सी बात ?"

"लाल की माँ पर भयानक विपत्ति टूट पड़ी है।"

मै कुछ-कुछ समझ गया, फिर भी, विस्तृत-विवरण जानने को उत्सुक हो उठा। "क्या हुआ ? जरा साफ-साफ बताओ।"

"वही हुआ जिसका तुम्हे भय था। कल पुलिस की एक पलटन ने लाल का घर घेर लिया था। बारह घण्टे तक तलाशी हुई। लाल, उसके बारह-पन्द्रह साथी, सभी पकड़ लिये गये है। सभी लड़को के घरो की तलाशी हुई है। सबके घर से भयानक-भयानक चीजे निकली है।"

"लाल के यहाँ .. ?"

"उसके यहाँ भी दो पिस्तौल, बहुत से कारतूस और पत्र पाये गये है। सुना है, उन पर हत्या, षडयन्त्र, सरकारी राज्य उलटने की चेष्टा आदि अपराध लगाये गये हैं।"

"हूँ !" —मैंने ठंडी साँस ली, "मैं तो महीनों से चिल्ला रहा था कि वह लौंडा धोखा देगा। अब यह बूढ़ी बेचारी मरी। वह कहाँ है ? तलाशी के बाद तुम्हारे पास आयी थी ?"

"जानकी मेरे पास कहाँ आयी। बुलवाने पर भी कल नकार गयी। नौकर से कहलाया—पराठे बना रही हूँ, हलवा, तरकारी अभी बनाना है। नही तो, वे बिल्हड़ बच्चे हवालात में मुरझा न जाएँगे। जेल वाले और उत्साही बच्चो की दुश्मन यह सरकार उन्हे भूखों मार डालेंगे। मगर मेरे जीते जी यह नहीं होने का।"

"वह पागल है, भोगेगी।" मैं दुख से टूटकर चारपाई पर गिर पड़ा। मुझे लाल के कर्मों पर घोर खेद हुआ।

इसके बाद, प्राय: एक वर्ष तक वह मुक़दमा चला। कोई भी अदालत के काग़ज़ उलटकर देख सकता है। सी० आई० डी० ने और उसके प्रमुख सरकारी वकील ने उन लड़कों पर बड़े-बड़े दोषारोपण किये। उन्होंने चारों ओर गुप्त समितियाँ क़ायम की थीं, ख़र्चे और प्रचार के लिए डाके डाले थे, सरकारी अधिकारियों के यहाँ रात में छापा मारकर शस्त्र एकत्र किये थे, पलटन में उन्होंने बग़ावत फैलाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने न जाने किस पुलिस के दारोग़ा को मारा था, और न जाने कहाँ, न जाने किस पुलिस सुपरिंटेन्डेन्ट को। ये सभी बातें सरकार की ओर से प्रमाणित की गयीं।

उधर उन लड़कों की पीठ पर कौन था। प्राय. कोई नहीं। सरकार के डर के मारे पहले तो कोई वकील ही उन्हें नहीं मिल रहा था, फिर एक बेचारा मिला भी, तो 'नहीं' का भाई। हाँ, उनकी पैरवी में सबसे अधिक परेशान वह बूढ़ी रहा करती। वह सुबह-शाम उन बच्चों को लोटा, थाली, ज़ेवर आदि बेच-बेचकर भोजन पहुँचाती। फिर वकीलों के यहाँ जाकर दाँत निपोरती, गिड़गिड़ाती, कहती—"सब झूठ है। न जाने कहाँ से, पुलिस वालों ने ऐसी-ऐसी चीज़ें हमारे घरो से पैदा कर दी हैं। वे लड़के केवल बातूनी हैं। हाँ, मैं भगवान का चरण छूकर कह सकती हूँ। तुम जेल में जाकर देख आओ वकील बाबू! भला, फूल-से बच्चे हत्या कर सकते हैं?"

उसका तन सूखकर काँटा हो गया, कमर झुककर धनुष-सी हो गयी, आँखें निस्तेज, मगर उन बच्चों के लिए दौड़ना, हाय-हाय करना उसने बन्द न किया। कभी-कभी सरकारी नौकर, पुलिस या वार्डर झुँझलाकर उसे झिड़क देते, धकिया देते। तब वह खड़ी हो जाती छड़ी के सहारे कमर सीधी कर और, "अरे! तुम कैसे जवान हो, कैसे आदमी हो! मैं तो उन भोले बच्चों के

लिए दौड़ती फिरती हूँ और तुम मुझे धक्के दे रहे हो ! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, भैया ?"

उसको अन्त तक यही विश्वास रहा कि यह सब पुलिस की चालबाजी है। अदालत मे जब दूध का-दूध और पानी-का-पानी किया जायगा तब वे बच्चे ज़रूर बेदाग छूट जायँगे। वे फिर उसके घर मे लाल के साथ आयँगे। हा-हा हो-हो करेंगे। उसे माँ कहकर पुकारेंगे।

मगर, उस दिन उसकी कमर टूट गयी, जिस दिन ऊँची अदालत ने भी लाल को, उस बंगड़ लठैत को, तथा दो और लड़कों को फाँसी और दस को दस वर्ष से सात वर्ष तक की कड़ी सज़ाएँ सुना दी।

वह अदालत के बाहर झुकी खड़ी थी। बच्चे बेड़ियाँ बजाते, मस्ती से झूमते बाहर आये। सबसे पहले उस बंगड़ की नज़र उस पर पड़ी।

"माँ !"—वह मुस्कराया, "अरे, हमे तो हलवा खिला-खिलाकर तूने गधे-सा तगड़ा कर दिया है—ऐसा कि फाँसी की रस्सी टूट जाय और हम अमर के अमर बने रहे—मगर तू स्वयं सूखकर काँटा हो गयी है। क्यों पगली, तेरे लिए घर मे खाना नहीं है क्या ?"

"माँ !"—उसके लाल ने कहा, "तू भी जल्द वहीं आना जहाँ हम लोग जा रहे है। यहाँ से थोड़ी देर का रास्ता है माँ! एक साँस में पहुँचेगी। वहीं हम स्वतन्त्रता से मिलेंगे। तेरी गोद में खेलेंगे। तुझे कन्धे पर उठाकर इधर-से-उधर दौड़ते फिरेंगे। समझती है ? वहाँ बड़ा आनन्द है।"

"आयगी न माँ ?"—बंगड़ ने पूछा।

"आयगी न माँ ?"—लाल ने पूछा।

"आयगी न माँ ?"—फाँसी-दण्ड-प्राप्त दो दूसरे लड़के

ने भी पूछा। और वह बकर-बकर उनका मुँह ताकती रही।
"तुम कहाँ जाओगे पागलो ?"

● ●

जब से लाल और उसके साथी पकड़े गये, तब से शहर या मुहल्ले का कोई भी आदमी लाल की माँ से मिलने से डरता था। उसे रास्ते में देखकर जाने-पहचाने बगले झाँकने लगते। मेरा स्वयं अपार प्रेम था उस बेचारी बूढ़ी पर, मगर, मैं भी बराबर दूर ही रहा। कौन अपनी गर्दन मुसीबत मे डालता विद्रोही की माँ से सम्बन्ध रखकर ?

उस दिन ब्यालू करने के बाद कुछ देर के लिए पुस्तकालय वाले कमरे में गया। वहीं किसी महान लेखक की कोई महान कृति क्षण भर देखने के लालच से। मैंने मेज़िनी की एक जिल्द निकालकर उसे खोला। पहले ही पन्ने पर पैंसिल की लिखावट देखकर चौंका। ध्यान देने पर पता चला, लाल का वह हस्ताक्षर था। मुझे याद पड़ गयी। तीन बरस पूर्व उस पुस्तक को मुझसे माँगकर उस लड़के ने पढ़ा था।

एक बार मेरे मन मे बड़ा मोह उत्पन्न हुआ उस लड़के के लिए। उसके वफ़ादार पिता रामनाथ की दिव्य और स्वर्गीय तस्वीर मेरी आँखों के आगे नाच गयी। लाल की माँ पर उस पाजी के सिद्धान्तों, विचारों या आचरणों के कारण जो वज्रपात हुआ था, उसकी एक ठेस मुझे भी, उसके हस्ताक्षर को देखते ही लगी। मेरे मुँह से एक गम्भीर, लाचार, दुर्बल साँस निकलकर रह गयी।

पर, दूसरे ही क्षण पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट का ध्यान आया। उसकी भूरी, डरावनी, अमानवी आँखे मेरी आप-सुखी-तो-जग-सुखी आँखों मे वैसे ही चमक गयीं, जैसे ऊजड़ गाँव के सिवान में कभी-कभी भुतही चिनगारी चमक जाया करती है। उसके रूखे, फ़ौलादी हाथ —जिसमें लाल की तस्वीर थी—मानो मेरी गर्दन

चापने लगे। मैं मेज़ पर से 'इरेज़र' (रबर) उठाकर उस पुस्तक पर से उनका नाम उधेड़ने लगा।

उसी समय मेरी पत्नी के साथ लाल की माँ वहाँ आयी। उसके हाथ मे एक पत्र था।

"अरे!"—मै अपने को रोक न सका "लाल की माँ! तुम तो बिलकुल पीली पड़ गयी हो! तुम इस तरह मेरी ओर निहारती हो, मानो कुछ देखती ही नहीं हो। यह हाथ में क्या है?"

उसने चुपचाप पत्र मेरे हाथ में दे दिया। मैंने देखा, उस-पर...जेल की मुहर थी। सज़ा सुनाने के बाद वह वहीं भेज दिया गया था, यह मुझे मालूम था।

मैं पत्र निकालकर पढ़ने लगा। वह उसकी अन्तिम चिट्ठी थी। मैंने कलेजा रूखा कर उसे ज़ोर से पढ़ दिया—

माँ!

जिस दिन तुम्हें यह पत्र मिलेगा उसके ठीक सवेरे मैं बाल-अरुण के किरण-रथ पर चढ़कर उस ओर चला जाऊंगा! मैं चाहता तो अन्त समय तुमसे मिल सकता था, मगर इससे क्या फ़ायदा? मुझे विश्वास है, तुम मेरी जन्म-जन्मान्तर की जननी ही रहोगी। मै तुमसे दूर कहाँ जा सकता हूँ? माँ! जब तक पवन साँस लेता है, सूर्य चमकता है, समद्र लहराता है, तब तक कौन मुझे तुम्हारी करुणामयी गोद से दूर खींच सकता है।

दिवाकर थमा रहेगा, अरुण रथ लिये जमा रहेगा! मैं, बंगड़ वह, यह सभी तेरे इन्तज़ार मे रहेंगे।

हम मिले थे, मिले है, मिलेंगे। हाँ, माँ! तेरा—लाल।

काँपते हाथ से पढ़ने के बाद पत्र को मैंने उस भयानक लिफ़ाफ़े मे भर दिया। मेरी पत्नी की विकलता हिचकियों पर चढ़कर कमरे को करुणा से कँपाने लगी। मगर, वह जानकी ज्यों-की-त्यों, लकड़ी पर झुकी, पूरी खुली और भावहीन आँखें

से मेरी ओर देखती रही। मानों वह उस कमरे मे थी ही नहीं।

क्षण भर बाद हाथ बढ़ाकर मौन भाषा मे उसने पत्र माँगा। और फिर, बिना कुछ कहे कमरे के, फाटक के, बाहर हो गयी। डुगुर-डुगुर लाठी टेकती हुई।

इसके बाद शून्य-सा होकर मैं धम से कुर्सी पर गिर पड़ा। माथा चक्कर खाने लगा। उस पाजी लड़के के लिए नहीं, इस सरकार की क्रूरता के लिए भी नहीं, उस बेचारी भोली, बूढ़ी जानकी-लाल की माँ के लिए। आह! वह कैसी स्तब्ध थी। उतनी स्तब्धता किसी दिन प्रकृति को मिलती तो आँधी आ जाती। समुद्र पाता तो बौखला उठता।

जब एक का घण्टा बजा, मैं ज़रा सगबगाया। ऐसा मालूम पड़ने लगा मानो हरारत पैदा हो गयी है। माथे में, छाती में, रग-रग मे। पत्नी ने आकर कहा, "बैठे ही रहोगे? सोओगे नहीं?" मैंने इशारे से उन्हे जाने को कहा।

फिर मेज़िनी की ज़िल्द पर नज़र गयी। उसके ऊपर पड़े रबर पर भी। फिर अपने सुखों की, ज़मींदारी की, धनिक-जीवन की और उस पुलिस-अधिकारी की निर्दय, नीरस, निस्सार आँखों की स्मृति कलेजे मे कम्पन भर गयी। फिर रबर उठाकर मैंने उस पाजी का पेंसिल-खचित नाम पुस्तक की छाती पर से मिटा डालना चाहा।

"माँ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ..."

मुझे सुनायी पड़ा। ऐसा लगा, गोया लाल की माँ कराह रही है। मैं रबर हाथ मे लिये, दहलते दिल से, खिड़की की ओर बढ़ा। लाल के घर की ओर कान लगाने पर कुछ सुनायी न पड़ा। मैं सोचने लगा, भ्रम होगा। वह अगर कराहती होती तो एकाध आवाज़ और अवश्य सुनायी पड़ती। वह कराहने वाली औरत है भी नहीं। रामनाथ के मरने पर भी उस तरह नहीं घिघियायी

जैसे साधारण स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर तड़पा करती है।

मैं पुन उसको —उसी को सोचने लगा। वह उस नालायक के लिए क्या नहीं करती थी। खिलौने की तरह, आराध्य की तरह, उसे दुलराती और सँवारती फिरती थी। पर आह रे छोकरे!

"माँ ां ां ां ां ां ां ां ां ां.."

फिर वही आवाज़! ज़रूर जानकी रो रही है, वैसे ही, जैसे कुर्बानी के पूर्व गाय रोवे। ज़रूर वही विकल, व्यथित, विवश बिलख रही है। हाय री माँ! अभागिनी वैसे ही पुकार रही है, जैसे वह पाजी गाकर, मचलकर, स्वर को खींचकर उसे पुकारता था।

अँधेरा धूमिल हुआ, फीका पड़ा, मिट चला। उषा पीली हुई, लाल हुई। अरुण रथ लेकर वहाँ क्षितिज के उस छोर पर आकर पवित्र मन से खड़ा हो गया। मुझे लाल के पत्र की याद आ गयी।

"माँ ां ां ां ां ां ां ां ां ां "

मानो लाल पुकार रहा था, मानो जानकी प्रतिध्वनि की तरह उसी पुकार को गा रही थी। मेरी छाती धक-धक करने लगी। मैंने नौकर को पुकारकर कहा ..

"देखो तो, लाल की माँ क्या कर रही है?"

जब वह लौटकर आया, तब मैं एक बार पुनः मेज़ और मेज़िनी के सामने खड़ा था। हाथ में रबर लिये उसी—उसी उद्देश्य से। उसने घबड़ाये स्वर से कहा

"हुज़ूर, उनकी तो अजीब हालत है। घर मे ताला पड़ा है और वह दरवाज़े पर पाँव पसारे, हाथ मे कोई चिट्ठी लिये, मुँह खोले, मरी बैठी है। हाँ सरकार, विश्वास मानिये, वह मर गयी हैं। साँस बन्द है, आँखे खुली..."

८

और तब महाराज कुमार को नींद आई

किसी रियासत के महाराज कुमार उस दिन कलकत्ता के एक विख्यात मारवाड़ी सेठ के मेहमान बनकर पधारे। सेठ ने महाराज कुमार के आतिथ्य मे लेक रोड स्थित अपना माडर्न बँगला ही अर्पित कर दिया, स-सामग्री और सर्वेन्ट।

महाराज कुमार को नींद न आने का रोग था। उसी की चिकित्सा के सिलसिले मे वह सुदूर-स्थित अपनी रियासत से कलकत्ता आये थे। उस रोग का कारण कुछ डाक्टरों ने दुर्बलता बतलाया—शरीर-मस्तिष्क दोनो ही की—मगर दूसरे डाक्टरों ने महाराज कुमार को नींद न आने का सबब पोलिटिकल बतलाया। क्योंकि उनकी रियासत भी भारतीय-संघ के समुद्र में लीन हो गई, अतः भविष्य-चिन्ता, अत' अमिट-रोग।

रियासतों की जनता जिस द्रुतगति से स्वतन्त्र हुई जा रही है उसे देखते ही कुछ डाक्टरों ने ऐसा विश्वास प्रकट किया कि महाराज कुमार का रोग अब कदाचित् दैवयोगेन ही दूर हो तो हो। उन्हें फ़िक्र है अपने भविष्य की। हैं वह एम० ए०-पास बेशक, पर, सिवा पढ़ने-लिखने, सोने और आर्डर देने के—दूसरा कोई काम महाराज कुमार को मालूम नहीं।

महाराज कुमार के साथ तीन डाक्टर और तेरह नौकर। तीन

डाक्टरो मे एक लेडी डाक्टर कुमार की माता की ओर से, एक बंगाली डाक्टर पिता की तरफ से और स्वयं महाराज कुमार का पर्सनल सर्जन मद्रासी डा० के० सी० रेड्डी। लेक रोड़ का बंगला ब्यूटीफुल, चारो ओर बाग-ही-बाग और बहार-ही-बहार—बारह-मासी। जागरण भी जहाँ पर पहुँचकर क्षण भर विश्राम करना चाहे ऐसा बँगला मारवाड़ी धनकुबेर का। कमरे विस्तृत, प्रकाशित, आधुनिकतम सज्जा से सज्जित।

पर वहाँ भी महाराज कुमार की आँखो मे नींद नही। सेमर के तकियो पर चैन नहीं, मन्दार के तकियो पर शान्ति नहीं, रेशमी तकियो पर राहत नहीं, मखमली तकियो पर आराम नहीं। तीन डाक्टर और तेरह नौकरो ने महाराज कुमार को सारी रात बेचैन देखा।

महाराज कुमार सोचते रहे कि कल उनके बाल-बच्चों का क्या होगा ? रियासत और पेन्शन मे दम है भी तो क्या ? जिस लोक-मत ने आज राजाओ के हाथ से सत्ता छीन लिया है, वही लोकमत भविष्य मे राज और राजवश के साथ क्या नहीं कर गुज़रेगा —कोई भरोसा है ?

कुमार की उम्र तीस साल की और उनके बच्चे ग्यारह याने एक कम पूरा दर्जन। तिस पर भी महाराज कुमार की सुपत्नी को देखिये तो अभी कन्या कुमारी या किशोरी-मुखी मालूम पड़ती हैं। कुमार को अपने परिवार से बड़ा प्रेम होना ही चाहिए।

कुमार के आधा दर्जन सेक्रेटरी सलाहकार, एक दर्जन 'कार', अनाप-शनाप ख़र्चे, अनाप-शनाप व्यापार. रियासत की इज्ज़त और कर्ज़ के बल पर सारा दिखावा चलता था। पर अब ? आज़ादी की इस हवा में ? अब किस रियासत की जनता सामन्तों के ठेंगे के नीचे रहेगी ? एक की भी नहीं। फिर ? हम राजवंशियो का क्या होगा ? क्या होगा मेरा ? मेरी सुपत्नी का ? एक महलभर प्रफुल्ल

कमल-मुख बच्चो का ? इन महलों और मोटरों का क्या होगा ? क्या बिना महल, मोटर, कुशन-गद्दी के हम राजवंशी मर नहीं जायेंगे ? इस बंधी पेन्शन मे शौकीनो के इतने बड़े परिवार का क्या होगा ? इतने में क्या शान रहेगी राजसी, क्या गान-तान और क्या नाच ? भावों से भरपूर होने के बाद अभावों का खाली जीवन खलेगा भयानक। जब अपना स्टैण्डर्ड ही न रहा, तो क्या जीना और क्या मरना ?

महाराज कुमार की आदत बहुत सबेरे उठकर नहा-निपटकर घूमने की। सारी रात नींद न आने पर भी ठीक ४ बजे उन्होंने बिस्तर छोड़ दिया और ४॥ बजे तक नहा-धो कपड़े बदल टहलने को बाहर निकले। सेक्रेटरी ने मोटर मँगाने की आज्ञा चाही तो महाराज कुमार ने इशारे से ना कर दिया—"मै अकेले ही घूमने जाऊँगा। तुम लोग अपना काम करो।"

राजकुमार लेक रोड से शहर की तरफ़ चले। पौने पाँच बजे अभी रात ही थी। कलकत्ता सो रहा था। बड़े-बड़े खम्बे बिजली की आँखों से ताक-ताककर धूर्त्त निशाचरों से नागरिकों की रक्षा कर रहे थे। "कितना प्रकाश ?" राजकुमार ने सोचा "पर बाहर का प्रकाश अन्तर का अन्धकार कहाँ दूर कर पाता है ? अगर इसी तरह कुछ दिनों और मुझे नींद न आई तो जिन्दगी का कौन भरोसा ? और मैं न रहूँगा—तो मेरे बेटों का क्या होगा ? बेटियों का क्या होगा ? पत्नी का ? और ! मैं फिर सोचने लगा।"

सोच या चिन्ता से बचने के लिए राजकुमार ने अपने चारों ओर देखा। देखा लोगों को सोते। लोग सोते नज़र आये बँगले में गुदगुदे पलँग पर नहीं, न तो रेशमी मखमली तकिये ही लगाकर। लोग सोये थे चारों ओर ऐसे-ऐसे स्थानों पर जहाँ सपने में भी सोने की कोई कल्पना न कर सके। पटरियों पर, मकानों के

सामने के बरामदों मे, दुकानो के चबूतरो पर। जिसका जहाँ सींग समाया वह वहीं सोता नज़र आया। अपने रिक्शो को गले में फँसाकर कतार मे सोये रिक्शे वाले। तरह-तरह के मैले मज़दूर एक-एक फटी चटाई पर दो-दो चार-चार सोते। बेख़बर, पेड़ के नीचे सोता कोई चीनी, पागल गोद मे कुत्ते का पिल्ला लिये। एक बड़े मकान के चबूतरे के नीचे की तग 'कोलिया' मे कुत्ते की तरह सोतो कोई अन्धी—अधनगी।

एक बड़े मकान के नीचे महाराज कुमार ने पटरी पर सोने वालो का एक पूरा मुहल्ला देखा। बेघर आवारे थे। उसमें पुरुष, उसमे स्त्री, उसमे बच्चे, उसमे बूढ़े, उसमे अपाहिज़। और सभी मस्त सोते, घोड़े बेचकर। वे दुःखो हैं या अभाव में—ऐसा एक के चेहरे से भी प्रकट नहीं। महाराज कुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ यह देखकर कि आदमी इतने कम सामान मे भी इतना स्वस्थ्य रह सकता है।

एक के सरहाने ढोल, दूसरे के हारमोनियम, तीसरे की बग़ल में एक-तारा, चौथे की बाँसुरी—"अरे!" कुमार ने सोचा—"तो ये गाते-बजाते भी है! इस दारिद्र्य मे! कमाल! और इतने लोग और ऐसे अभावों में प्रसन्न रह सकते हैं तो हमीं कौन से बताशे हैं या मोम के बने हुए है। सुख-दुख महज़ ख्याल—मान लेने की बात है। जिस स्थिति मे मैं मर जाऊँ उसमें ये जी ही नहीं रहे हैं बल्कि हँसते-बोलते, गाते-बजाते, पीते-खाते जी रहे है। इनसे सबक लेना होगा। परिस्थिति के अनुसार आदमी में अपने को बदल देने की ताकत होनी चाहिए। जो दुख उठाने को तैयार नहीं, उन्हें सुखी रहने का कोई अधिकार नहीं है।"

महाराज कुमार की नज़र फटे बोरे पर ख़र्राटे लेते दो प्राणियों पर पड़ी। उनमें एक जवान आवारा था और दूसरी युवती

भिखमंगिन। और दोनों के बीच में ६ महीने का एक नन्हा-सा बच्चा।

"अच्छा! हज़रत भी यहाँ सो रहे हैं।"—कुमार के मुँह से निकल गया। बच्चे से बढ़कर आरामतलब, सुकुमार और शाहमिज़ाज कौन होगा? वह भी सुख-दुख से निर्द्वन्द्व सानन्द सो रहा है। यह लोग सुखी यों है कि इन्हें राजसुख के आने-जाने का भय नहीं। इनके सिर पर किसी संघ या सरदार के रियासती-विभाग या विचार की छाया नहीं। राज-रियासत छोड़ो—इनके लिए तो "सकल भूमि गोपाल की" है।

महाराज कुमार के मन में सोने की इच्छा उत्पन्न हुई। वहीं, भिखमंगे परिवार के निकट। उन्हें पहली जँभाई आई, दूसरी, तीसरी—ऐसा लगा कि तुरन्त सो नहीं जायेंगे तो गिर पड़ेंगे। मकान के खम्भे का सहारा ले राजकुमार भिखारियों के निकट पड़ सो गये।

● ●

काफ़ी दिन निकल जाने पर भिखारी जगे तो उन्होंने अपने बीच मे एक विचित्र पुरुष को पाया जिसमे भिखारियों का एक भी लक्षण नहीं और राजलक्षण अनेक! धुले चाँद-सा वदन, सिल्क की महँगी पोशाक, अमरीकी कट के मुलायम कीमती जूते, अँगूठियाँ, कलाई-घड़ी।

"कोई जासूस है,"—एक ने अन्दाज़ लगाया—"हम में चोर-डाकू ढूँढने को, राजसी-स्वांग बनाकर आया है।"

"पागल है,"—दूसरे ने कहा, "और कोई धनवान पागल है!"

"यह भिखारी बनकर हमारे दल में मिल जाय तो मैं इससे शादी कर लूँ।"—एक मलिना मगर युवती ने मोह प्रकट किया।

"ज्योतिषी की राय क्या है?"—एक बूढ़े कोढ़ी ने सलाह दी, "ज्योतिषी को जगाओ।"

जगकर, आँखे मलकर, महाराज कुमार को देखते ही अनपढ़, आवारा, ज्योतिषी एकाएक भभक उठा, "अरे यह तो कोई राजा है जिसके भाग मे भिखारियो का अगुवा बनना लिखा है !"

"ज्योतिषी गधा है !"—उसने कहा जिसकी राय में राजकुमार कोई बना हुआ जासूस था। "यह जासूस है, किसी की तलाश में आया होगा और दारू के नशे मे बुत सो गया होगा। नशा उतरने के पहले मैं साले का सिर फोड़ देना चाहता हूँ जिससे फिर कभी यार खॉ के पीछे पड़े ही नहीं।"

वह मोटा सोटा लेकर कुमार की तरफ बढ़ा ही था कि चारों ओर से आधा दर्जन आदमी उस पर टूट पड़े। मना करने पर भी कुमार के जाँनिसार नौकर सावधानी से उनके साथ ही थे। बहुत दिनों बाद महाराज कुमार को नींद लगती देख उन्होंने बाधा देना उचित न समझा। कुमार के सो जाने पर वे सब थोड़ी दूर पर छितराकर प्रतीक्षा मे बैठ गये थे। "ठहरो !" राजसेवको ने भिक्षुक को डॉटा, महाराज कुमार को सोने दो। यह स्थान शुभ और स्वास्थ्य-प्रद है "हमारे लिए जहाँ पर हमारे अन्नदाता को कई महीने बाद आज नींद आई है। तुम सबको इनाम मिलेगा।"

"यह ज्योतिषी साला जादूगर है,"—एक भिखारी ने प्रशंसा की, "जो कहता है, ठीक उतरता है। हमारे बड़े भाग्य जो आज राजकुमार भी हमारे बीच मे सुख की साँस ले रहा है। अरे सालो !"—उसने दूसरो को ललकारा, "मुँह क्या देखते हो ? राजा मेहमान आया है। जो भी रूखा-सूखा अपने पास हो उसे पकाओ, बनाओ। जो हमारे साथ सोने को आया है, वह हमारे साथ खाने को भी आया है।"

"जो हमारे साथ खायगा वह हमारा बनकर रहेगा भी,"—राजकुमार से सम्बन्ध करने की इच्छुकी भिक्षुकी युवती ने कहा,

"यह उठेगा तो मैं नाचूँगी वह नाच जो फिलिम से सीखा है।"

"और मैं बाँसुरी बजाऊँगा !"—आवारे ने कहा।

"और मैं ढोल !"

"मैं एकतारा !"

कुमार उठे तो उन्हें मालूम पड़ा कि दरबार लगा है। दरबार असिल दिलों का ही होता है। और जब कुमार की आँखें खुलीं-खुलीं ज़रा देर से—तो उनके सामने पूरा दरबार भरा नज़र आया। नाचने को तैयार युवती भिक्षुकी, बाँसुरी, ढोल, एकतारा, हारमोनियम सँभाले अनेक भिखारी, कई लड़के कुमार का मुँह धोने के लिए टीन के छोटे-बड़े डिब्बों में गर्म और ठण्डा पानी लिये, एक लड़की फटा मगर साफ तौलिया लिये, भिक्षुक-वैद्य, ज्योतिषी और बुज़ुर्ग-मन्त्रियों की तरह हाथ बाँधे-सामने खड़े। इधर कुमार ने जागरण की अँगड़ाई ली, उधर 'कोरस' या समवेत-स्वर में सुरीले-भिखारी गा चले—"मोकूँ कहाँ ढूँढें बन्दे ? मैं तो तेरे पास में !"

६

'पीर'

पीर का अर्थ पहुँचा हुआ इस्लामी फकीर नहीं, मीठा दर्द है। शब्द यह ज़रूर पीड़ा से बना होगा, पर, पीर बनते-बनते पीड़ा और भी पिस गई होगी—शब्द की ध्वनि से ऐसा स्पष्ट सूचित होता है। परायी पीर पाने वाले प्राणी पृथ्वी पर बहुत कम हैं। तुलसीदास ने तो केवल राम ही को ऐसा माना जिसका सहज स्वभाव दूसरे की पीर से द्रवित होने का।

ईमान-हू हम अपने को उन दुर्लभ सज्जनों में से नहीं मानते जो ख़सलतन परायी पीर पाने वाले होते हैं। फिर भी यह जो हम आपके सामने पेश करने जा रहे हैं वह परायी पीर ही है। क्योंकि इसमें प्रथम पुत्र की चर्चा है और फिर नौजवान पिता या पति की चर्चा। इधर प्रकृति और परमात्मा की प्रसन्नता से अपना ब्याह ही नहीं हुआ कि किसी पत्नी के पति बनकर पूत पाते। यह तो हमारे दिलदार यार प्रोफेसर रमाकान्त की पीर का हीर है। वह इसे ऐसा सुनाते हैं, तन्मय होकर, कि उनके दर्द का चित्र साकार होकर श्रोता के हृदय-रूपी फोटो-फलक पर उतर ही आता है। पर सब लोग सुख-दुख के अनुभव-चित्रों को उस तरह काग़ज़ पर उतार नहीं पाते जैसे कलाकार फ़ोटोग्राफर जो डेवलप करने का कमाल जानता हो।

सो, तुलसी के राम ही नहीं, हमारे राम भी परायी पीर पाते हैं।

कमलनैन

प्रोफ़ेसर रमाकान्त जब शुरू करते हैं तब एक साँस में सारी घटना सुनाकर ही दम लेते है। कहते हैं—आज मैं ४२ साल का हूँ, तब २२ का था। इधर एम. ए. पास किया, उधर प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। ऐसा सुन्दर, ऐसा तेजस्वी कि सारा घर प्रकाश से भर-सा उठा। लेकिन १२वें दिन जब अपने पिता प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य पं० श्रीकान्त जी की गोद मे लड़के को रखते हुए उसकी कुण्डली वगैरह की चर्चा दबी-ज़बान से की तो चमक कर उन्होंने कहा, 'यह कोई महापुरुष भूलकर हमारे यहाँ पैदा हो गया है। मुझे इससे कोई आशा नहीं, सो. यह जब पाँच साल का होगा तब कुण्डली बना दूँगा।''

और मुझे विश्वास नहीं हुआ, वैसे ही, जैसे वेद्व्यास के तत्त्वोपदेश पर शुकदेव को नहीं हुआ था। शुकदेव को सन्तुष्ट किया विदेह जनक ने वही बातें बतलाकर जो वेद्व्यास ने पहले कही थीं। पर अपने पितासे असन्तुष्ट होकर जब मैंने दूसरे ज्योतिषी को लड़के के जन्म का समय वगैरह बताया तो उसने मुझे सन्तुष्ट किया बिलकुल विपरीत बाते बताकर। उसने कहा कि लड़का चिरंजीव होगा और बड़ा ही भाग्यशाली। उसने कुण्डली भी बना दी जिसे पिता जी से छिपाकर मैंने अपनी पत्नी को दिखलाया और सँभाल कर रखने को दे दिया।

पिता जी ने तो उसका नाम भी रखने से इन्कार कर दिया, और पुकारने के लिए 'बुद्बुद' नाम बतला दिया। पर ज्योतिषी से पूछकर माता जी के मुंह से मैंने उसका नाम कमलनैन रखा दिया। पिताजी के 'बुद्बुद' में क्षण भंगुरता का इशारा इस लड़के को लेकर मुझे गवारा नहीं था।

लड़के का रंग जैसे चम्पा का फूल। वही मुलायमियत। आँखें

तो लाखों मे एक—सचमुच कमल-जैसी बड़ी-बड़ी, ऐसी गोया पूरे मर्द की आँखे बच्चे के चेहरे पर फिट कर दी—गयी हों। जब वह बारह दिनों का था तभी बारह महीने का मालूम पड़ता था। दो साल तक वह यो बढ़ा जैसे कला-कला कलाधर! दो ही साल में वह चार साल का बालक मालूम पड़ने लगा था। गोस्वामी जी के कई दोहे, कई स्तुति के श्लोक, उसने अपनी दादी जी से सीख लिये थे। बड़ा ही ज़हीन लौंडा। गये सिनेमा देखने और एक ही श्रवण में 'मैं बन की चिड़िया बनकर बन-बन बोलूँ रे'—हू-बहू नक़ल कर गाने लगा। मैं कहता हूँ, फिल्म वाली अभिनेत्री से भी बेहतर। नटी के गाने में मादकता थी, पर दो साल के बच्चे के गाने में स्वर्ग था स्वर्ग। सारे मोहल्ले की तरुणियाँ एक बार मेरे कमल-नैन को गोद में उठाकर हलराने का आनन्द लेने के लिए आतीं और निहाल हो-हो जातीं। मेरी पत्नी कहती—तुम जिस तिस के हाथ मे बच्चे को दे देते हो, मेरा दिल धड़कने लगता है। दूसर ज्योतिषी ने जो भी कहा हो, पर जब तक यह पाँच साल का नहीं हो जाता मुझे बाबा जी की बातों का डर बना ही रहेगा। मैंने कहा—"ज्योतिषी और डाक्टर अपना भाग्य और नब्ज़ नहीं परख सकते। पिता जी ने चिरंजीव रखने के लिए ही इसके जीवन की शंका प्रकट की होगी। नहीं तो जिस ज्योतिषी ने कुण्डली बनाकर बच्चे को चिरायु प्रमाणित किया है उसने कुछ कौड़ी देकर नहीं पढ़ा है। वह भी बहुत मशहूर ज्योतिषी है।"

वह मेरा कमलनैन मुझे बहुत ही प्रिय हो गया। मेरे ख़ानदान की हरेक पीढ़ी मे एक-न-एक महापुरुष होता है, मैं ही ऐसा हुआ जिसमे कोई अपूर्व-विशेषता नहीं। मेरे पिता जी भी असाधारण ज्योतिषाचार्य! सो, मैंने सोचा, मैं नहीं विशेष हुआ तो क्या—कमलनैन विशेष होगा। मेरा कमलनैन विशेष पुरुष हुआ तो मैं हो चुका—आत्मावैजायते पुत्र! बड़ा होने पर मेरा बेटा घोड़े पर

चढ़े, यह विचार आते ही मैंने उसके लिए कलकत्ते से काठ का घोड़ा मँगा दिया, गद्दीदार। मेरी पत्नी ने कहा—घोड़े पर मेरा लाल नहीं चढ़ेगा जब कि सबसे इज्ज़तदार सवारी मोटर है। और मैंने उसके लिए छोटी-सी मोटरगाड़ी ख़रीद दी। अभी मोटर चलानेभर की शक्ति उसमे नहीं थी, फिर भी, सीट पर स्टेरिंग या चक्रके सामने बैठा देने से हज़रत उचक-उचककर जहाँ तक भी चल पाती चलाने से बाज़ न आते। मैं कहता हूँ शर्ट-नीकर-मौजे और बूट पहने मास्टर कमलनैन पूरे अंग्रेज़ मालूम पड़ते थे।

और वह घड़ी आई जिसकी दहशत मेरी पत्नी में प्रकट और मुझ में अप्रकट तभी से थी जब से पिता जी ने लड़के का नाम रखने या पाँच वर्ष के पहले कुण्डली बनाने से इन्कार कर दिया था। एक दिन एकाएक सबेरे सोकर उठते ही अपनी माँ के बिस्तर पर से वह मुझे पुकार-पुकारकर रोने लगा—'चाचा! चाचा!' वह मुझे चाचा ही कहता था। मैंने जाकर देखा दाहने पाँव के घुटने के नीचे एक स्थान को पकड़कर वह वेदना-व्यथित बिलख रहा था। मै ज़रा घबराकर देखने लगा किसी कीड़े-मकोड़े के काटने का निशान। कुछ सूजन-सी नज़र आयी, पर दंशन आदि का कोई भी चिह्न दिखाई नहीं दिया। मैं उसे डाक्टर कृपाल के यहाँ ले चला तो अम्माँ ने यह कहकर रोका कि वह फोड़ा-फुन्सी नहीं, किसी भूत-चुड़ैल की बाधा का लक्षण है। उन्होंने कहा कि बचपन में उसी जगह उसी तरह मुझे भी दर्द एक बार हुआ तो पल्टू चमार के झाड़कर गंडा बाँध देने से अच्छा हो गया था। पल्टू तो बेचारा अब नहीं रहा पर उसकी औरत को वह मंत्र मालूम है।

गर्ज़े कि लाख पढ़ा-लिखा होने पर भी माता जी के सामने मेरी एक न चली। उन्होंने कहा कि डाक्टर का हाथ लगते ही उस रोग का शैतान बहुत ही नाराज़ होता है। पढ़ी-लिखी होने पर

भी मेरी पत्नी ने इस बारे में अपनी सास ही का साथ दिया। चमारिन बुलायी गयी। उसने कहा—है तो शैतान ही, पर जल्द जाने वाला नहीं। और सात दिनों तक उसकी झकमारी चलती रही। पर लड़के के पैर का दर्द नहीं गया। तब औरतों की सम्मति लिये बिना ही मैं डाक्टर कृपाल के घर पर ले आया। उन्होंने कहा कि यह भूत बाधा नहीं, एक विशेष प्रकार का अल्सर या मांस का फोड़ा है जो अभी बिलकुल आरम्भिक अवस्था में है। उन्होंने बिलाडौना की पट्टी उस पर लगा दी। पहले तो दो-एक दिन आराम मालूम पड़ा, मगर फिर सूजन डबल से भी ज्यादा हो गयी और जलन या दर्द का पूछना ही क्या। अब पिता जी के मित्र डाक्टर सुलेमान को दिखलाया तो मालूम हुआ कि डाक्टर कृपाल ने मर्ज़ के समझने में भारी भूल की थी। और वह फोड़ा चमड़े या मांस का नहीं, हड्डी का फोड़ा था। डाक्टर सुलेमान ने कहा कि यह फोड़ा निहायत घातक वर्ग का है। इसकी अच्छी चिकित्सा लखनऊ में ही हो सकती है। मेडिकल कॉलेज-अस्पताल में - जहाँ बिजली की किरणों की चिकित्सा की मशीन है।

लखनऊ जाते हुए ट्रेन में अपने बच्चे का मुँह दुख से आधा देख अपने समाज पर बड़ा रोष हुआ। पहले तो भूत-प्रेत के नाम पर रोग को बढ़ाया गया, फिर डाक्टर कृपाल ने देखा भी तो अंड का बंड। इस नालायक डाक्टर ने अगर ग़लत पहचान न की होती तो भी लड़के की आज यह हालत न होती। डाक्टर कृपाल पच्चीस बरस से प्रैक्टिस कर रहे हैं। कम दिनों से डाक्टरी करने वाले कितनी ग़लतियाँ करते होंगे भगवान ही जाने। रोग ग़लत समझने से मरीज की जो तकलीफ बढ़ जाती है—खासकर वह अगर बच्चा हो- तब तो ग़ैरजिम्मेदार डाक्टर को गोली मार देने का नियम निर्धारित करने का मन होता है।

मैंने देखा मेरे लड़के का मुँह निस्तेज। आँखों में जोत, देह में

ख़ून ही नहीं। तो क्या कमलनैन 'बुद्बुद्' प्रमाणित होगा? मेडिकल कॉलेज अस्पताल में गोद में उठाकर ले जाते हुए मुझे लगा कि मैं बाज़ी हार चुका हूँ, कमलनैन मर चुका है और मैं मात्र शव लेकर अस्पताल जा रहा हूँ। मगर अस्पताल की सुव्यवस्था और चुस्त-मुस्तैदी देखकर इस घोर निराशा मे भी आशा की एक किरण चमक उठी। डाक्टर लोग निहायत भले आदमी और उदार सेवा-शील। और वह परम सुन्दरी बाईस वर्षीया ऐंग्लो-इण्डियन नर्स मिस डायमंड ग्रीन। वदन-सरोज, उन्नत उरोज, जवानी से कसी हुई, बिजली-सी फुरतीली, प्रभाती हवा-सी स्वस्थ, मसीहाई की तस्वीर वह मुझे मालूम पड़ी। जब वह कमलनैन को विद्युत-किरण मशीन पर रखने लगी थी तब मैंने डाक्टरों की आँखें बचाकर यौवन के आकर्षण से विवश हो उस नर्स का रूप-रस पान किया था। क्षण-मात्र ही वह कर्म हुआ और दूसरे ही क्षण मेरा मन सावधान होकर साश्चर्य पछताने लगा, कि कहाँ तो ऐसा घातक समय, पहला पुत्र और प्रिय पुत्र मारू रोग से पीड़ित, कहाँ ग़ैर-ज़िम्मेवार मन-मोर कहाँ से उचककर कहाँ नाचने लगा, सतरंगी पंख पसार! मुझे मन-ही-मन बड़ी ग्लानि हुई अपनी मूर्ख मोह पर। मैंने भगवान से क्षमा प्रार्थना तो की, पर मन-से-मन बोला—जब आदमी के दुर्दिन आते हैं तभी उससे पातक कर्म होते हैं। ऐसे कुमौके पर रूप-रस-पान करने की नीयत शायद ही भगवान माफ करें। और देर तक मैं सोचता ही रहा गर्दन लटकाये—गोया अस्पताल मे था ही नहीं।

"आप इतने चिन्तित न हों।"—नर्स की आवाज़ पर मेरा ध्यान टूटा—"लड़का बड़ा होशियार है। मशीन पर हिला नहीं, घबराया नहीं।"

"चाचा!"—यंत्र पर पड़े-ही-पड़े कमलनैन ने मुझे पुकारा। डाक्टर, नर्स का ध्यान बच्चे की तरफ और बच्चे का ध्यान नर्स

के फैले हुए हाथों पर रखा—"अरे, यह ठंडा हो गया है!" उसने कहा।

माँ ने झपटकर बच्चे के मस्तक और सीने की हरारत की जाँच की और रोआँसी होकर बोली—"दौड़ो, दौड़ो! डाक्टर को बुला लाओ—इसकी तो साँस का पता ही नहीं चलता!"

अब मैंने उसकी नब्ज़ देखी तो सचमुच वह दग़ा कर चुका था! मैंने कहा,—"अब डाक्टर बुलाने से कोई लाभ न होगा। मेरी मूर्खता से बुरी तरह भीगकर.." औरतों से पहले मैं ही फफक-फफककर रोने लगा। क्षण भर में सारे घर में हा-हाकार, कोहराम पड़ गया। शोर सुनते ही पिता जी भी आ गये। उन्हें वस्तुस्थिति समझने में देर न लगी—

"एकदम ख़ामोश! चुप हो जाओ! मैं कहता हूँ हरएक आदमी चुप हो जाओ! जब मैंने कहा कि वह धोखा देगा तो मेरा विश्वास न कर तुम सबने माया को राम की तरह पाला और अब हाय-हाय कर मेरा दिमाग़ ख़राब कर रहे हो। चुप हो जाओ, नहीं तो मैं इस घर-रूपी पागलख़ाने को छोड़कर चला जाऊँगा जिसमे सच कहने पर कोई मानता नहीं और जब दुख पड़ता है तब हाय-हाय सभी करते है।"

और पिता जी के रोब से हरेक आदमी चुप। उसका नदी में प्रवाह हो गया। दिन बीता, हफ्ते, पखवारे, महीने बीते, पर फिर खुलकर हमारे घर में कोई रोया नहीं। अवाँ की तरह हम अन्दर-ही-अन्दर धधककर रह गये, क्या मजाल कि मुँह पर शोक का धुआँ नज़र आ जाय!

मगर कुछ ज़ख्म ऐसे होते हैं जो कभी भरते ही नहीं, हरे ही रहते हैं। कुछ दर्द ऐसे, जिनकी दवा लुकमान के ख़ुदा या धन्वन्तरी के ईश्वर के पास भी नहीं। सत्रह साल हुए उसे मरे। सत्रह साल बराबर उसी वक़्त मेरी नींद रात मे खुल जाती है जब मैं

कमलनैन को गोद मे लेकर स्टेशन से घर लौट रहा था याने डेढ़ बजे रात। और फिर नींद आती ही नहीं। सोचता हूँ, और तारे गिनता हूँ। वह होता तो इस वक़्त १६ वर्ष का होता। बी. ए पास कर चुका होता। उस-जैसे सुन्दर लड़के को दामाद बनाने वाले बीसियो ससुर आज पीछे पड़े होते और मै होता सुधारक गर्व से उन्हें सुनाता कि—"मै इसका व्याह तभी करूंगा, जब यह पढ़-लिखकर अपने पॉवो पर स्वतन्त्र खड़ा होने योग्य होगा।"

लेकिन वह बुदबुद तो महासागर मे विलीन हो गया। रह गयीं दो लड़कियॉ—एक ग्यारह साल की और दूसरी चौदह की। एक लौंडा है सात साल का। वह होता तो अब तक कमाने क़ाबिल हो गया होता। समझ मे नही आता कि इन लड़कियो को ओढ़ूं या बिछाऊँ। और प्रिय मित्र आप विश्वास करे, खड़ी जवानी मे मैं बूढ़ा हो गया हूँ। बाल काले है, पर दिल पक गया है। भोगता सब कुछ हूँ, सुहाता कुछ भी नहीं है।

"दिल ही न रहा उम्मीद कैसी,
जड़ कट गई नख्ले-आरज़ू की।"

१०

बाँके पीर

जुम्मन खाँ की बगिया सुभानगंज मे शैतान की तरह मशहूर इसलिए कि उसी मे बाँके पीर की कब्र थी, उत्तरी चहारदीवारी के बीचों बीच। मज़ार का खुला द्वार सड़क की तरफ था। सामने पचासों बरस पुराना इमली का पेड़।

कहते है कि पिछले पचास वर्षों मे सुभानगंज का जितना नुकसान बाँके पीर ने किया उतना और किसी ने नहीं, न तो आँधी ने, न पानी ने। रात मे जो भी उस सड़क से गुज़रता उसका मुर्दा ही सबेरे नज़र आता। और कस्बे का नाम इसलामी होने पर भी रहते थे उसमे ज्यादा हिन्दू ही, अस्सी सैकड़े। सो, बाँके पीर के शिकार सौ में सौ-के-सौ हिन्दू ही होते। पिछले पचास सालों में कोई एक सौ हिन्दू पीर की नज़र हो गये। हरेक मुर्दे के पोस्टमार्टम या चीरफाड़ से यही पता चलता कि मौत साँप के काटने से हुई। पर साँप कहीं नज़र न आता। पिछले पन्द्रह वर्ष से तो हर साल हिन्दू-मुसलिम दंगा होता आ रहा है सुभान-गंज में। जब भी कोई मरता तभी शहर के सारे हिन्दू उस खूनी मज़ार को खोद फेकने के लिए फावड़े लेकर जुम्मन खाँ की बगिया पर टूट पड़ते। बगिया का वर्तमान बाशिन्दा सुलतान जोलाहा मज़ार की रक्षा में जान लेने-देने पर आमादा हो जाता। सारे-

के-सारे मुसलमान उसकी ताईद करते। नतीजा यह होता कि बांके पीर का शैतान एक जान लेता मगर दर्जनो हिन्दू-मुसलमान आपस मे लड़ मरते।

बाँके पीर की मजार बड़े-बूढ़ों के कथनानुसार सन्, ५७ के ग़दर के दिनों मे तैयार की गयी थी स्वयं जुम्मन ख़ाॅ द्वारा। उसने एक ही रात मे उसको तैयार कराया था स्वयं अपने लिए। क्योंकि उसे ख़बर मिली थी कि सुभानगंज पर गोरी पलटन छापा मारने वाली है, ख़ासकर उसकी दौलत लूटने के लिए। जुम्मन ख़ाॅ बड़ा दौलतमंद, अमीर था, पर भारी कंजूस। सम्पत्ति सारी जोड़ी थी उसके मरहूम दादा ने जो दिल्ली दरबार का पाॅच हज़ारी मनसबदार था। जुम्मन साॅप की तरह उस सम्पत्ति की रक्षा भर करता। भला उससे कस्बे के एक आदमी का भी नहीं हुआ और जब गोरों ने चढ़ाई की तो मुसीबत मे पड़ा। सारा शहर गोरो की चढ़ाई के दो दिन पूर्व रातों रात वह मज़ार तैयार सारा उसने अपने वारिसो को हिदायत की थी कि अगर वह मार करा डाला जाय तो, बचने वाले, उसा की बनवायी कब्र मे उसे दफ़नायें।

और जब गोरे चढ़ आये तब वह उठकर लड़ा, पर वे सैकड़ों और जुम्मन के साथी मुट्ठी भर। सारे कस्बे को न तो गोरों ने छेड़ा न गोरों को कस्बे वालों ने। सो, कंजूस पर जब मुसीबत फट पड़ी तब सब-के-सब मन-ही मन ख़ुश हो एक दूसरे को बतलाते रहे कि सूम का धन शैतान खाय। आख़िर दुश्मनों ने साथियों के साथ जुम्मन को गिरफ्तार कर धन के लिए घर की तलाशी ली। पर, कहते है, एक फूटी कौड़ी भी उनके हाथ न आयी। सारे का सारा माल न जाने कहाॅ ग़ायब हो गया। फलत लाख सांसत होने पर भी जब जुम्मन ने माल का पता बताया नहीं तब ग़ुस्से मे गोरों ने उसकी बोटी-बोटी अलग कर

डाली। एक भी साथी, रिश्तेदार या वारिस जीता न बचा जो ताज़े मुर्दे को नयी कब्र मे दफनाता। जुम्मन से निराश गोरो ने सारे सुभानगंज को कसकर लूटा। चलते वक़्त उस पल्टन के कप्तान ने अपने मुसलमान बावर्ची रहमान जोलाहे को वह बगिया इनाम मे बख्श दी। वर्तमान मालिक सुलतान जोलाहा उसी रहमान का परपोता है जिसकी आमदनी का ज़रिया चर्खा या कर्घा नही, बगिया के आम और इमली के पेड़ थे। हमेशा फटे-हाल मुश्किलो मे गुज़र-बसर करता वह, पर बाँके पीर की मज़ार पर उसकी श्रद्धा अपार। क्या मजाल जो कोई अँगुली भी उठा दे पीर की तरफ़। पिछले दिनों सभी यह कहने लगे थे कि पीर के लिए लड़ता रहे इसलिए अंग्रेज़ सरकार सुलतान जोलाहे को तीस रुपये माहवार गुज़ारा देती है। पर हमारे पास इसका कोई सबूत नहीं, सिवा इसके कि जब कोई विदेशी सुभानगंज देखने आता तो जुम्मन खाँ की बगिया ज़रूर जाता। ये लोग सुलतान जोलाहे को इनाम-अकराम भी देते।

मगर अंग्रेज़ी राज के हटते ही सुलतान की यह आमदनी भी खत्म हो गयी। फिर भी पीर पर श्रद्धा उसकी घटी नहीं। न पीर ने ही हिन्दू-हत्या बन्द की। पिछले दिसम्बर मे रखिया उठान एक नौजवान क्षत्रिय बगिया के पीर का शिकार हुआ। उसके बाद भयंकर दगा हुआ था। उसी वक़्त मृत नौजवान के बाप ने घोषणा कर प्रतिज्ञा की थी कि वह हत्यारे पीर की कब्र जिस दिन खोदकर फेंक देगा उसी दिन अन्न ग्रहण करेगा। उसने सारे क़स्बे में घूम-घूमकर हिन्दुओं को समझाया कि तीस दिनों की मुसीबत को एक दिन उठकर मिटा ही देना मुनासिब है। अंग्रेज़ चले गये पर पीर बचा है। बिना उसका मूलोच्छेद किये किसी की भी मुक्ति नहीं। और सबके मन में बात जम गयी।

मगर सुलतान जोलाहा डरा नहीं। वह और भी चौकसी से पीर की रक्षा करने लगा। उसने भी चारों तरफ घूम-घूमकर मुसलमानो को उभारा कि पीर मिटने न पावे। एक दल का नेता वह क्षत्रिय बना ओर दूसरे गिरोह का सरगना यह सुलतान जोलाहा। ठन गयी फिर तो, लेकिन बजी नही, क्योकि सुलतान की चौकसी के कारण आक्रमण करने का मौका ही हिन्दू न पाते।

परसो वह मौका आखिर आया ही। ठीक खड़ी दोपहरी में हिन्दुओ ने फावड़े-कुदालियों से लैस हो, बाँके पीर की मज़ार पर आक्रमण कर दिया। सुलतान उस समय कहीं बाहर गया हुआ था। देखते-ही-देखते भीड़ ने मज़ार के पास की चहार-दीवारी की ईंटें बिखेर दीं। क़ब्र पर पहली गेती मारी उस क्षत्रिय प्रतिज्ञावान ने। उसका अलस्तर-पलस्तर क्षण-मात्र मे धूल-धूल बना दिया गया। अब जड़-बुनियाद के मिटाने की कोशिश की जानी शुरू हुई, तो एक भयानक साँप फनफनाकर बाहर आया। सनकने के पहले जनसमूह ने उसकी चटनी कर दी। अब लोगो को निश्चय हो गया कि वह साँप ही सारी मुसीबत का कारण था। साँप को मारने पर लागो को स्वयं पीर के विनाश का विश्वास हो गया। फिर भी क़ब्र अभी खुदती ही रही।

इसी समय ख़बर पाते ही भारी मुसलमान-दल के साथ जोलाहा सुलतान झपटा आ गया। यह दल भी हथियारों से लैस था। सुलतान तो हाथ मे भाला सँभाले, तीर की तरह भीड़ में घुस, सीधे वहीं आकर रुका जहाँ वह क्षत्रिय मज़ार की बुनियाद खोद रहा था।

"बस !"—जोलाहे ने ललकारा क्षत्रिय को, "रोक दो हाथ ! नहीं तो मेरा भाला तुम्हारे सीने के बाहर हो जायगा बे-रोक !"

"अबे जोलाहे हट !"—क्षत्रिय ने कहा, 'साँप कुचल डाला गया, पीर की चटनी बन गयी, अब मिट्टी पर क्यो जान देता है ?"

"मैं कहता हूँ ख़बरदार !"—सुलतान डटा रहा, "तुमने ज़मीन पर गेंती मारी कि मैंने घुसेड़ा भाला।"

मगर क्षत्रिय जोश में था। बेटे की मृत्यु के रोश में उसने क़ब्र की बुनियाद पर वार किया ही, साथ ही जोलाहे ने भी भाला चलाया, लेकिन वार चूक गया। पीछे खड़े दुश्मनों ने दण्ड पकड़ लिया। भाला सुलतान के दुश्मन के सीने को तोड़ न सका—उसने महसूस किया। साथ ही देखा कि क्षत्रिय की गेंती भी ज़मीन में किसी कड़ी चीज़ से टकराकर रह गयी—चिनगारी फेंक कर। क्षत्रिय ने फिर प्रहार किया। और पुन चिनगारी-चिनगारी। अब लोहे की एक मोटी कड़ी भी नज़र आने लगी जिसका मतलब क्षत्रिय से पहले जोलाहे ने समझा। तुरन्त मुट्ठी से भाला अलग फेंक हाथ जोड़कर उसने कहा—

"मैं हार गया बाबू साहब ! मज़ार भी ख़त्म हो गयी। अब ज़मीन खोदकर गड्ढा बढ़ाने से कोई फ़ायदा नहीं।"

"गड्ढा ही नहीं, तालाब बनेगा यहाँ, तब पापी पीर की हत्याओं की सफाई होगी। मैं कहता हूँ दूर हो ! गेंती ज़मीन पर नहीं मारने दोगे तो तुम्हारे सीने पर मारूँगा।"

"मार डालिये मुझे !"—सुलतान ने कहा, "खोदकर ज़मीन को तालाब बना दीजिये, पर मेरी एक बात कान में सुन लेने के बाद। डरिये मत—मैं बे-हथियार हूँ।"

भीड़ से ज़रा अलग जाकर क्षत्रिय से जोलाहे ने कहा, "क़ब्र के नीचे दफ़ीना—भारी ख़ज़ाना—मालूम पड़ता है।"

"झूठा !"

"कसम ख़ुदा की !"—जोलाहे ने ज़ोर दिया, "लोहे की कड़ी देखते ही मैं ताड़ गया सारा क़िस्सा। ज़रूर जुम्मन ख़ाँ ने गोरों के डर से इसी क़ब्र में अपना मालो-ज़र छिपाया होगा। अच्छा बतलाइये खोदते वक़्त हड्डी-ठटरी वगैरह भी मिली थी ?"

"हड्डी-ठटरी तो एक भी नज़र नहीं आयी केवल साँप एक निकला था।"—क्षत्रिय भी गम्भीर हो उठा।

"तो पीर की मजार नक़ली थी। पहले के लोग कब्र, मन्दिर और मस्जिद के ही नीचे दफीने गाड़ते थे। साँप वही जुम्मन साला रहा होगा। मरने के बाद भी ख़ज़ाने से चिपका। कंजूस होने के सबब हरेक राहगीर को लुटेरा मानकर काटता रहा होगा शैतान।"

क्षत्रिय को विश्वास हो गया।

"फिर अब क्या किया जाय?"—जोलाहे से पूछा उसने।

"आगे खुदाई बन्द कर दी जाय और लोगों को मालूम न होने दिया जाय यह भेद। नहीं तो, दफीना सरकारी हो जायगा। आज ही रात मे हम मालोमाल ऐसे हो जायँगे जिसकी कोई इन्तेहा नहीं।"

साँठ-गाँठ पक्की होते ही दोनों नष्ट कब्र के पास भीड़ में पुनः आ गये। क्षत्रिय ने लेक्चर शुरू किया—"हिन्दू भाइयो! मज़ार तो ख़त्म हो गई—आप ख़ुश हो कि आज से—हिन्दू-मुस्लिम तक़रार भो ख़त्म हो गयी। बड़े मियाँ जनाब सुलतान का कहना है कि अंग्रेज़ों के जाने के बाद भो हिन्दू-मुसलमानो का आपस में लड़ते रहना ठोक नहीं, सा, अब आप सब ख़ुशी-ख़ुशी अपने-अपने घर तशरीफ़ ले जाइये।"

"बिरादरानेमुस्लिम! बाबू साहब ने मेरी बात मान ली।"—मुसलमान जोलाहे ने मुसलमानो को बतलाया—"इसी में सारे कस्बे का भला है। दो ही मीठी बातों में हमारा सीना साफ़ हो गया। देखिये—" क्षत्रिय को गले लगाकर जोलाहे ने कहा—"दिल खोलकर हम मिल रहे है। मेरा दिल कहता है कि इस मेल से, हर तरह से ग़रीब हम दोनों अमीर—ख़ुशहाल बन जायँगे। जहाँ सुमत, तहँ संपत नाना। आज के फटे-हाल को कल ही

मालामाल देख दिल खोलकर मिलने के फ़ायदे समझकर आप लोग भी एक दूसरे से गले मिलेंगे। मेल और माल में कोई फ़र्क़ नहीं। जैसे आज हम मालदार बन रहे हैं इन्शाअल्लाह वैसे ही आप सभी बनें। आमीन।"

क्षत्रिय को फिर से गले लगा जोलाहे ने कहा—"अब आप लोग लौट जाइये। बहुत दिनों बाद हिन्दू-मुस्लिम-मेल होने से हमें बड़ा मज़ा आ रहा है। आज हम सारी रात एक दूसरे को गले लगायेंगे।" भीड़ छट गयी पर वे एक दूसरे से गले ही मिलते रहे!

दोपहर ढली, शाम हुई और जब चिड़िया का एक पूत भी न रह गया तब मुसलमान ने गैती उठाकर हिन्दू से कहा—"आप थक गये होंगे अब मैं शुरू करता हूँ।"

इस घटना के दो ही महीने बाद जब क्षत्रिय और जोलाहा अचानक अमीर बन गये तब लोगों को अन्दाज़ लगा कि कब्र के नीचे ख़ज़ाना था जिससे एक करोड़ का मालोज़र दोनों के हाथ लगा था। एक-एक के भाग मे पचास-पचास लाख!

११

मेघराग

नव्वाबी—

हज़रतावाद के नव्वाब मुसलमानी अमलदारी में बेशक बड़े जागीरदार या सूबेदार माने जाते थे। याने उनकी जागीरें सारे सूबे में फैली थीं, और उन दिनों हजरतावाद मे नव्वाबी-फौज थी—पन्द्रह हज़ार पैदल, सात हजार घोड़-सवार, और तोपखाना भी। उन दिनो हज़रतावाद के नव्वाब पहले तलवार-बाज़, बहादुर बनते थे, फिर विचित्र-विलासी।

वही हज़रतावाद अब स्टेट नहीं, 'इस्टेट' है। नव्वाब सर दिल-फ़रोश ख़ा बहादुर साहिब बड़े आदमी अब भी माने जाते हैं, लेकिन महज़ इसलिए कि जिस किले मे वह रहते हैं वह उनके बुज़ुर्गों का बनवाया है जो नि:सन्देह महान थे। नहीं तो नव्वाब मौजूदा की आमदनी इतनी भी नहीं जितनी किसी चलते रोज़गारी सेठ की।

मगर, सुभानअल्लाह!—क्या मजाल जो तंगदस्ती नव्वाब सर दिलफ़रोश साहब के पास भी फटके। जवाहिरात बेचकर, इलाके बंधक रखकर, अपनी रिआया पर अजीब और ज़बरदस्त टैक्स लादकर, हज़रतावाद के नव्वाब आज भी पिल-पिल ऐय्याशी करते हैं। नव्वाब साहब की उम्र इस वक़्त तक अस्सी बार मौसमे

बहार को बाग़-बाग़ होकर देख चुकी है।

लोग कहते हैं, आज भी, कम-से-कम आधा दर्जन जन्नती हूरों के बिना नव्वाब साहब हिल-डुल नहीं सकते। लोग यह भी कहते हैं कि नव्वाब ने दिल्ली के एक मशहूर हकीम से लेकर कोई ऐसी ज़बरदस्त दवा खाली है जिससे बाल पक जाने पर भी उनकी जवानी ढलती ही नहीं। लोग कहते हैं—हैरत से हैरान—जिस गुलबदन का रस नव्वाब साहब एक बार ले लेते है वह फिर काँटे-सी ही नज़र आती है। लोगो की कहने की आदत को कोई क्या कहे?

ग़रीब—

उस बूढ़ी का नाम शरीफन है जिसकी बेटी को लोग फीरोज़ी नाम से जानते हैं। हज़रतगबाद की उस ख़ास सड़क पर वह जो एक टूटा-सा मकान है और मवेशियों का गंदा बाड़ा—उसी में बूढ़ी शरीफन का सब कुछ है। सुना है उसका खाविंद बड़ा शेर-दिल था और अंग्रेज़ी सरकार की मदद में किसी काबुली-लड़ाई में काम आया था।

उस दिन शरीफन घर में झाड़ू देती हुई बड़बड़ा रही थी—"न जाने फीरोज़ी किधर चली गई! फीरोज़ी, फीरोज़ी!"

"आई अम्मीं! ओह, मैं बच गई!" बोलती हुई एक हरी, सुनहरी, रूप-भरी लड़की अन्दर आई। उसके पीछे-पीछे एक अध-बूढ़ा फ़क़ीर भी दाख़िल हुआ।

"क्या हुआ बेटी?—किससे बची?"

"नव्वाब के आदमी मुझे पकड़ ले जाना चाहते थे। अगर .." फ़क़ीर की तरफ इशारा कर अहसानो से दबी फीरोज़ी बोली—"अगर हज़रत मेरी मदद न करते तो अम्मीं आज वे ज़रूर मुझे उठा ले जाते—ज़रूर मैं मर जाती।"

अपनी प्यारी बेटी के मुँह से मरने का नाम शरीफन नहीं

सुन सकी—वह सिहर उठी—"मरे तेरे दुश्मन ! मैं कुर्बान, मेरी जान, मेरी आँखों की रोशनी ! यह नव्वाब पागल हो गया है ।"

"मैं पीर साहब के लिए कुछ नाश्ता-पानी लेकर आती हूँ अम्मी !"—फीरोज़ी रँगीली तितली-सी एक कोठरी में उड़ गयी।

"हज़रत !"—शुक्रिया अदा करती हुई शरीफन फकीर से बोली—"आपके एहसानों को हम कभी. .!"

बूढ़ी के ख़त्म करने से पहले ही बाहर से तीखी और जोरदार आवाज़ आई—

"शरीफन ! ओ शरीफन !"—और नव्वाब के कई सजे सिपाही भीतर घुस आये।

"तेरी लड़की कहाँ है ?"

"क्यो ? तुमसे और मेरी लड़की का वास्ता ?"—तमककर और मामला गम्भीर समझकर शरीफन बोली।

'नव्वाब साहब चाहते हैं, तेरी लड़की को—ओ नादान ! तेरी तकदीर अब सोने की घटा-सी छाकर बरसेगी।"

"आग लगे ऐसे कमीने सोने में !"—बिगड़ी बुढ़िया, "निकलो मेरे घर से ! नहीं तो, मारे झाडुओ के—!"

"पागल न बन बूढ्ढी, नहीं तो धक्के खायेगी। बता—फीरोज़ी कहाँ है ?"

"वह नहीं है—वह भाग गई। तुम मेरी बेटी को उस नापाक कुत्ते के लिए नहीं पा सकते।"

इसी वक़्त फकीर के लिए नाश्ता-पानी लेकर सुन्दरी फीरोज़ी कोठरी से बाहर आई—

"आयँ ! अम्मी- यही लोग मुझे पकड़ ले जाना ।"

"पकड़ो !"—दस्ते के अफसर ने एक सिपाही को ललकारा—"ज़बरदस्ती गोद में उठाकर इस हूर की बच्ची को पालकी मे बन्द

कर दो।"

सिपाही ज्योंही फ़ीरोज़ी की तरफ बढ़ा त्योंही फकीर ने लोहे के चिमटे से उसके सर पर भरपूर वार किया। दूसरे की बेटी पर हाथ उठाने वाले का माथा फूट गया।

इसके बाद दस्ते-का-दस्ता फ़कीर पर टूट पड़ा। वह और शरीफन मज़बूत रस्सियों से जकड़ दिये गये। महा सुन्दरी फीरोज़ी को नव्वाब सर दिलफ़रोश खां साहिब के सिपाही घसीट ले गये।

फ़क़ीर—

"आह! हज़रत!! मेरी बेटी—मेरी ग़रीब बेटी!"

"ख़ुदा का नाम ले शरीफ़न! भला होगा।"

"ख़ुदा? हज़रत, अब मालूम पड़ता है अल्लाह मियाँ सो गये है। तभी तो गरीब, लाचार पिसते है पर न्याय, इन्साफ़ की सूरत तक नजर नहीं आती।"

"ऐसा नहीं शरीफन,"—तरस खाकर फकीर बोला, "हमारा अल्लाह बिलाशक ग़रीबपरवर है। फ़ीरोज़ी का, पागल नव्वाब, कुछ भी न बिगाड़ सकेगा।"

"वह सैकड़ों छोकरियो को मोहब्बत के नाम पर मारकर जी रहा है। वह पूरा शैतान है। अल्लाह मेरे! ज़रूर मेरी लड़की बेइज्ज़त होगी—मरेगी—ओह! यह सब जानने-सुनने के पहले ही गला घोंटकर मैं मर जाना चाहती हूँ! हज़रत ख़ता माफ! आप मेरे महमान—ख़ातिर-न-तवाजह, ऊपर से मैं बदनसीब रोना चाहती हूँ। हाय बेटी—हाय फिरोज़िया—रे!"

"अच्छा माँ रो!"—धीरे से फकीर बोला, "दिल से रोने से अल्लाह पसीजता है। माँ, तुम रोओ और मैं कुछ गाऊँ। मुमकिन है हम दोनों की दिलगीरी से बेचारी की अस्मत बच जाये।"

और शरीफन रोने लगी। और फकीर गाने लगा—और लो! आसमान में धुआँधार बादल घिरने लगे!!

रग-विरंगे दीपको से जगमग रंगमहल या ऐशगाह मे बैठे नव्वाब सर दिलफरोश खां साहब सुगन्धित तम्बाकू पी रहे थे। पास ही एक खूबसूरत साकी सुराही और प्याला लिये नशीले अन्दाज़ से खड़ा था। नव्वाब की आँखे रतनारी, उनके खिले कपोल गुलाबी और फड़कते होठ खूनी रग के झलक रहे थे।"

"साकी !"

"हुज़ूर !"

"हुज़ूर नही, मेरे प्यारे साकी ! मुझे दिलबर पुकारो !'

"दिलबर !"

"ज़रा तेज़ ढालकर दो, और उस हठीली सोनपरी फीरोज़ी को भी किसी बहाने से मस्त कर यहाँ फौरन लाओ ! साकी !"

"दिलबर...!"

"खूब ! खिड़की से झाँककर देखो तो, चाँद है या बादल ! हवा काफी ठण्डी है—बहुत प्यारी !'

"दिलबर ! बादल घिरे है। बाहर काजल—काला अँधेरा फैला है ! हवा सनक रही है।"

"बादल ? अभी तो आसमान—फीरोज़ी के मुँह की तरह—साफ था। ये बादल, अरे—साकी !"

"हुज़ूर—दिलवर !"

"बादलों मे बूँदे होती है, बूँदो मे नशा होता है है न ?"

"और थोड़ी शौक फर्माइये !'

"ला ! बादल घिरे है—मैं एक घूँट मे सारी बोतल पीऊँगा। फ़ीरोज़ी रसीली है—मैं एक घूँट मे पी जाऊँगा साकी !"

"इसी वक्त मदहोश नव्वाब के सामने फीरोज़ी लाई गई। कई सुन्दरी बाँदियाँ उसको गोद मे उठा, फूलो से सजा, बलिदान की बकरी बना सर दिलफरोश के सामने ले आई।

लड़खड़ाते नवाब ज्योंही सुन्दरी फ़ीरोज़ी को, मतलब से,

गोद मे लेने को लपके त्योंही—आश्चर्य ! त्योंही ! ठण्डी हवा के एक तेज़ और बर्फीले झोके ने ऐशगाह के सारे चिरागों को यकायक ठंडा कर दिया। देखते-देखते सारा ज़गमग अँधेरा हो गया।

"उफ़, कैसी सर्द हवा !"—नव्वाब चौके।

"उफ़ ! दोज़ख का अँधेरा !"—साकी घबराया।

"बिजली कैसी चमक, तड़प रहा है ? शैतान जाग उठा है। भागो ! भागो ! अब तो इस घर मे भी तूफानी-बादल घुस आये—साकी ! मैं पानी से सराबोर हो रहा हूँ। कौन गा रहा है ?"

"कोई पहुँचा हुआ गवैया मेघ-राग गा रहा है हुज़ूर !"—साक़ी ताड़ गया—"गाना बन्द नही किया जायगा तो हज़रता-बाद बर्बाद हो जायेगा। तूफान से ऊबकर मर जायगा।"

"दौड़ो रे !" नव्वाब साहब भय से काँपकर चिल्ला उठे—"देखोरे ! कहाँ पर, कौन मेघ-राग पानीदार गा रहा है। उसको इज्ज़त से मेरे सामने लाओ।"

और जब तक नव्वाब के आदमी पता लगाकर लौटे तब तक मारे सर्दी के सनके साहब की सारी शरारत सिकुड़कर शान्त हो गयी। वह डरने लगे कि ज़रा और टेंपरेचर बढ़ा और उनकी रूह ने कालिब का साथ छोड़ा।

"हुज़ूर !"—लौटकर भींगी बिल्ली की तरह नव्वाब के सिपाही बोले—"इसी फीरोज़ो के घर मे एक फकीर धुआँ-धार मेघ-राग गा रहा है। कहने पर वह न तो रुकता है और न आता है। हमने ज़बरदस्ती करनी चाहो, तो बिजली तड़पकर टूटने लगी ! हमारे सर पर पत्थर बरसने लगे ! हुज़ूर इस फीरोज़ो को छोड़े बिना ख़ैर नहीं।"

"ले जाओ !" काँपते नवाब साहब बोले—"दूर करो इस

साँप की बच्ची को ! मैं तोबा करता हूँ, मेरे अल्लाह ! अपने गुनाहो की ! उफ ! बड़ी सर्दी है। बख्श दे मुझे !"

उसी वक्त फीरोज़ी बाइज्ज़त पहुँचा दी गयी अपने घर। और तब वह फ़कीर, गाना बन्द कर, घोर अन्धकार मे,अपने ही बनाये हुए रस से भीगता, नव्वाब के क़िले की ओर बिजली की तरह बढ़ा।

बिजली की चमक मे अध-मरे नव्वाब ने फकीर के चमकते चेहरे को देखा। उस चेहरे मे उन-जैसे गुनहगार के लिए ऐसी मलामत थी कि बूढ़े सर दिलफ़रोश खां साहब बहादुर कॉप उठे।

"रहम ! हजरत ! मेरे गुनाह माफ फर्माइए--हमारी जान बचाइये।"

"बेशक रहम—बेशक माफी—नव्वाब ! आदमी जब जागे, तभी सवेरा। सबका मालिक पाकपरवरदिगार करीम है, रहीम है। उसके बन्दो को उसी की राह से चलना चाहिए—न कि शैतानी रास्ते से।"

"ओह ! पहले पानी बन्द कीजिये हज़रत ! नही तो मैं मरा—।"

"नहीं नव्वाब !"—मुस्कराकर फकीर बोला—"तुम्हे हमारे मालिक ने मौका दिया है—बख्श दिया है। अब तुम बच गये। मै दीपक-राग गाता हूँ।"

और बर्फीली हवा मन्द होकर बन्द हुई, बादल निखरकर बिखर गये, प्रकाश रंग-बिरंगे दीपक—आप-ही-आप जगमगाने लगे।

मेघ-राग गाने वाला फक़ीर, ख़ुदा को रहीम साबित करने के लिए दीपक-राग गाने लगा !

१२

डाभ

बंगाल के कल्याणपुर स्टेशन पर नारियल बेचने वाली के कुच बड़े, आँखें बड़ी। पर मेरे संगी रजनीगोपाल ज़मींदार की नीयत बुरी, तबीयत छोटी। हम पैसेन्जर ट्रेन से उतरे बदल कर ऐक्सप्रेस लेने के लिए, जो दो घण्टे बाद आने वाली थी। ट्रेन से उतरते ही मेरे संगी ने पहले नारियल वाली ही को नज़र मारी। उसी ने बतलाया कि "मेरी नज़र लड़ते ही साली ने यों त्योरी चढ़ाकर तरेरा गोया खा ही जायेगी।"

मैंने कहा—"हिमाक़त है सरासर इस तरह जिसतिस को ताकना। सरासर सही किया उसने। अरे अपने धंधे रोज़-रोज़ नारियल बेचने की लाचारी का ख़याल न होता तो वह मार भी बैठती।"

"और मैं मार खा लेता? पिट जाता? आपकी बातें!" रजनी-गोपाल ज़मींदार बोला—"अब इतने कमज़ोर रजनी बाबू नहीं कि एक नाज़नी मारे और हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहें।"

बातें धीरे-धीरे चलते हुए हो रही थीं। आगे दो कुलियों पर सामान था। हमने प्लेटफार्म पर छतनार खड़े आम के पेड़ के नीचे ठहरकर ट्रेन का इन्तज़ार करना उचित समझा। अभी सामान रखा ही जा रहा था कि नारियल वाली हमारे सामने से

पुनः गुज़री। टोकरी उसकी खाली, माल समाप्त। मगर रजनी-गोपाल जमींदार के मुँह में लगाम नहीं। आँखों मे हया तो है ही नहीं। बेवजह छेड़खानी—

"ओ नारियल वाली! डाभ है—डाभ ?" और वह नागिन की तरह चमककर ड्योढ़ी होकर, फन काढ़कर खड़ी हो गयी। नागिन के फन होता है या नहीं, मुझे सर्पिणी-रूप का ज्ञान नहीं, पर, बड़े-बड़े कुचों और आँखों वाली वह श्यामा नारियल वाली तो सरासर फन काढ़कर खड़ी हो गयी थी!

"पिटोगे और मुझे भी पिटवाकर छोड़ोगे।" रजनी बाबू से नारियल वाली के दूर निकल जाने पर मैंने कहा -"ये लोग ग़रीब हो, पर स्वाभिमानी होते है। पानी पर आ जाये तो ख़ून खराबा हो जाये।"

"अजी बँधवा दूँ सालों को—जितने हो सबको; ख़ून-खराबा के तो बोल बड़े! रजनीगोपाल ज़मींदार का नाम सुनते ही पुलिस वाले यों वश में हो जाते है जैसे महुअर-स्वर से साँप। ज़मींदार नाम के रौब बड़े। ज़मींदारी है या नहीं, इसे तो कोर्ट-रजिस्ट्रार बतलावेगा। रौब बतलाते है रजीनगोपाल ज़मींदार।'

"भाई मेरे, रौब-रौब की जगह बतलाया जाता है; न कि हर जगह। मैंने समझाना चाहा—सफलता की आशा से उदासीन—"फिर दूसरे की लुगाई पर रौब-बन्दी, उसकी ग़ैरहाज़िरी में, बिलकुल अनुचित है। रामायण और महाभारत की दुर्घटनाएँ घटने लगती है ऐसे मामलो मे।"

"हा हा-हा-हा!" रजनीगोपाल ज़मींदार ठठाकर हँसा-"कहाँ सीता-हरण, द्रौपदी-चीर-हरण और कहाँ यह यौवन की हवा मे लपेटकर यात्रियो को नारियल बेचने वाली नीच नारी। जो मर्द ऐसी चरपरी औरत को अपरिचितो की ट्रेन के आगे भेजता है इस लिए कि मुसाफिर उसके हाथो अधिक माल लेगे, उसे जानना

चाहिए, मैं कहता हूँ—तहेदिल मे वह जानता है—कि क्या कर रहा है ? कुछ पैसों के लिए जो ऐसा करती है, वही कुछ और के लिए क्या-क्या न करने पर राज़ी हो जायगी।"

यहाँ भी मै आपसे 'एग्री' नहीं करता। मैंने अपनी बिना आवेश के मेरी निम्न वर्ग मे एक ऊँची यह कि मर्द, औरत, बच्चे बूढ़े, वश चलते सभी श्रम करें और हाथ-पाँव हिलाकर हरेक अपनी रोटी कमा ले। नारियल वाली का मर्द पेड़ पर चढ़कर फल उतारता होगा, खेती-बाड़ी सँभालता होगा और घर-गृहस्थी के साथ ही स्टेशन पर नारियल बेचने का काम औरत के हिस्से पड़ा होगा। उसने जवान औरत को मज़दूरी में लगाकर बुरा नहीं किया, न तो भगवान ने औरतों को जवान कामिनी ही बनाकर बुरा किया है। बुरे वे भले आदमी जो तीन आने का नारियल किसी की लाख-टके की जवानी मे लपेटकर लेना चाहते है ! ऐसे लोग इन्साफ़-पसन्द-नागरिक नहीं, डाकू है। डाकू किसी का धन लूटना चाहता है, ये किसी का सुनहरी यौवन। और लो ! मैंने रजनी बाबू को दूर पर आते नारियल वाली के मर्द को दिखाया—यह लो ! डाभवाली का डाभवाला आ रहा है। होशियार ! ज़रा भी बात करने मे चूके और आई मुसीबत।

और देखूँ तो रजनी बाबू का चेहरा सुफ़ैद-सोख़्ता बेदाग़ ! अनीति कायर होती है।

"वह तो भन्नाया चला आ रहा है।" रजनी ज़मीदार ने कहा—"अब तुम्ही उलझो बाबा ! मै तो मस्त-मानुस, हँस-बोलकर दिन 'पास' करने का शौकीन। ऐसा काला भुजंग उस डाभवाली का मर्द होगा और वह धारदार हथियार लेकर ज़रा-सी बात पर लपका आवेगा मैंने कल्पना भी नही की थी। मै तो भागता हूँ पीछे से।"

"ठहरो !" खिसकते मनचले मर्द को मैंने रोका—"भागने से

मुसीबत बढ़ती है। डरते क्यो हो ? सामना करो। कोई बलात्कार तो नही किया है किसी ने। भागिये मत।"

उसके हाथ मे नारियल काटने का धारदार औज़ार, रग कोलतार, आँखे छोटी और खूनी—"किसको डाभ चाहिये, सरकार!" उसने पूछा—"मेरी लुगाई से कौन डाभ माँग रहा था ? आप ?" उसने रजनीगोपाल ज़मीदार ही से पूछा। ज़मीदार ना करने ही वाला था कि मैंने इशारे से उसे समझाया कि वह हाँ करे। हाँ करने पर उसने कहा—"ज़रा तकलीफ तो होगी, पर हुज़ूर मेरी झोपड़ी तक चले—नजदीक ही है। वहाँ पर ताज़े-ताज़े, हरे-हरे डाभ जितने माँगिये उतने। चलिये।"

"चलिये!" ज़बरदस्ती मैंने धकेला घबराते रजनीगोपाल ज़मीदार का। और हम चल पड़े। आगे-आगे वह नारियल वाला काला देव, पीछे हम दोनो। स्टेशन से ज़रा ही दूर पर उसकी झोपड़ी। वह हमे अन्दर ले गया। मैली दरी बिछी खाट पर बैठा कर उसने अपनी औरत—उसी नारियल वाली—को बुलाया।

"अरी ओ! सरकार लोग पधारे है। इनके लिए पहले धान की लाई और गुड़ ला—पानी भी—तब तक पेड़ पर चढ़कर ताज़े डाभ मै उतारता हूँ।"

भद्र गृहणी की तरह नारियल वाली ने सीकों की छोटी टोकरियों मे सज्जन के दिल की तरह खिले धान, धुले पलाश के पत्तो पर गुड़, लोहे के घड़े का पानी और लोटा सामने रख दिया, निगाहे नीची किये और फिर दूर कोने मे खड़ी हो गई। उधर उसका मर्द कमर मे रस्सी बाँध नारियल के पेड़ पर चढ़ गया। मैं उसके सद्-व्यवहार और सत्कार से प्रसन्न हो उठा। शबरी के बेरो में भगवान राम को जो स्वाद मिला उसी के लोभ से मै धान और गुड़ 'भकोसने' या तेज़ी से खाने लगा। गोया ऐसी चीज़ कभी खाई ही नहीं थी। पर रजनीगोपाल सन्न-साधे खामोश। उसके

चेहरे पर गिरगिट की तरह बदलते रंग !

"खाइये जी !" मैने कहा।

"बुरा ला फँसाया। खाऊँ क्या अपना कलेजा ? ज़रा देखो उस औरत की तरफ़—कातिला— !"

मैंने देखा, नारियल वाली डाभ तराशने के छुरे को पत्थर पर ताव दे रही थी।

"यह क्या करती हो बहन ?" मैंने कहा—"मेरे साथी डरते है उस पर धार देते देखकर।"

"उन्हीं के लिए तो इसे तेज़ कर रही हूँ।"—उसने बतलाया, "डाभ वाले बाबू के लिये।"

"सुना ??" काँपकर रजनी ज़मींदार सट गया मुझसे।

"खाओ, घबराओ मत !" धीरे से मैंने सँभाला, "जब तुम्हीं ने डाभ माँगा तो छुरे पर ताव वह देगी किस के लिए ? सच तो कहती है।"

खैर साहब, किसी कद्र उसने भी खाना शुरू किया। अब नारियल वाला पाँच हरे-हरे, बड़े-बड़े डाभ लेकर हँसता हुआ झोपड़ी मे आया।

"धन्यभाग हमारे ! जो ऐसे बड़े आदमियों के कदम आये।" उसने कहा।

पाँचों डाभ हम पी गये। दो मैं और तीन रजनीगोपाल ज़मींदार। चलने के वक़्त जब हमने क़ीमत और इनाम की शक़्ल मे दो रुपये देने की कोशिश की तो उसने दाँतो से जीभ काट अपने कान पकड़े—"आप महमान—भगवान, नदिया-नाव सँयोग कि आपने डाभ चाहे और दर्शन दिये। इधर लोग डाभ नहीं पीते। किसी को खिला-पिलाकर हम कीमत नहीं लेते। झोपड़ा ग़रीब हो—पर होटल नहीं है। लौटते वक़्त अगर इस स्टेशन पर रुकना हो तो फिर पधारिये और धन्य कीजिये हमे—धान-गुड़ खा, डाभ पीकर।"

१३
चाँदनी

९ बजे रात ..

लड़कियाँ...? ना भाई, लड़कियाँ नहीं, वे तो युवतियाँ थीं; और थीं एक-से-एक बड़ी-चढ़ी सुन्दरियाँ। उनकी संख्या ठीक दो दर्जन और एक थी। वे मिस मिनी की कारीगरी से सजे 'ड्रेसिंग-रूम' या शृंगार-सदन मे, एक धारा मे, खूबसूरती से खड़ी थीं।

पोशाक ..? हाँ भाई, थी तो ज़रूर कोई पोशाक उनके गुल-बदन पर, मगर, वह बीसवीं सदी का पहनावा था और इस पहनावे की कहानी तथा सनातनी-परिधान की कथा में उतना ही अन्तर है, जितना कोट, पैंट और वल्कल वसन मे, 'मरे' होटल के 'मटन' और 'असन कन्द फल फूल' मे, 'कलियुगे कलि प्रथम चरणे. श्वेत वाराह कल्पे .गौरांग राज्ये' तथा 'त्रेता युगे . राम राज्ये मे।'

मगर, दुर्भाग्य या सौभाग्य से, न तो आप राम-राज्य के पाठक है और न यह त्रेता युग की कहानी। अत. उन पच्चीस पंचदशियो के बीसवीं सदी के परिधान की जैसी-का-तैसी तस्वीर ही आप देखे और ढूँढे इन पंक्तियो मे। क्योकि, मिस मिनी के ड्रेसिंग-रूम की चर्चा है और वह, आधुनिक सभ्यता के केन्द्र, इस युग की अमरावती, फ्रान्स की राजधानी पेरिस की चलती-फिरती, हँसती-खेलती कुसुम-कुमारी है। साथ ही आज के ज्ञान की ज्योति से

चमककर, कभी-कभी वह त्रेता युग और राम-राज्य की निन्दा भी कर बैठती है। कहती हैं, अगर हमारे फ्रांस में राम-राज्य हो, तो हम फ्रांसीसी ज़रूर ही ७६३ की क्रान्ति को दोहरा दें। क्योंकि पहले तो हम 'राजा' ही नहीं चाहते और फिर राम-सा राजा...? जो महारानी सीता तक को, व्यर्थ की बात के लिए, अपने राज से निकाल दे, अपने आधे सिंहासन पर से धकेल दे? शिः, ना, हमें राम-राज्य और राम की ज़रूरत नहीं।

यह मिस मिनी कौन हैं? ऐसा सवाल यदि राम-राज्य के प्रेमी करना चाहें, तो बड़ी ख़ुशी से कर सकते है। वह बड़ी-बड़ी भूरी आँखों वाली, मंगोलियन-मुखी, सुखों से फूली नहीं, तो कसी, नाटी और छोटी-सी पेरिस रंगमंच की एक विख्यात नर्तकी हैं। हमारी प्रसिद्ध रियासत के परमेश्वर-स्वरूप महाराजाधिराज गत वर्ष जब विदेश-यात्रा के लिए गये थे, तब वहीं पेरिस मे मिनी-महाराज-सम्मेलन हुआ था। एक ही दृष्टि में तो मिस मिनी ने महाराज-के मोही-मन को अपनी ओर मोड़ लिया था। फिर प्राइवेट सेक्रेटरी और दल के अन्य सरदारों के लाख मना करने पर भी उन्होंने अपने मत में तिल बराबर भी परिवर्तन नहीं किया। जवाहिरात के भाव में मिस महोदया के उस मंगोली-मुख को खरीदकर, महाप्रभु उन्हे सादर और सविनय अपने राज्य मे ले ही आये। इसी देश की हवा मे साँस लेकर, यहीं का नमक खाकर और पानी पीकर हमारे, धर्मावतार की 'लिटिल मिनी' ने राम-राज्य से नफ़रत करने और कोसने का अभ्यास किया है।

सब लोगो को पता न होगा; पर, मिस महोदया गत चार वर्षों से हमारी रियासत की मुखीश्री 'शेरी' और 'शेम्पेन' के बिल्लौरी-गिलास में ढाल-ढालकर उड़ाती जा रही है। पहले जब वह गरमा-गरम थीं, तब महाराज उन्हीं के यौवन की आग में अपना सर्वस्व डालकर, आठों याम, आँख और छाती सेंका करते थे।

मगर, इधर कुछ दिनों से शायद मिस महोदया की यौवनाग्नि पर 'अति परिचयात् अवज्ञा' की राखी छा गई है। तभी तो आजकल महाराज उनसे अपनी अनन्त प्रेमिकाओ को विविध वेश-विन्यास मे सजाने का काम लेते है। एक तरह से इन दिनों वह महाराज के विलास-भवन का निरीक्षिका-पद सुशोभित कर रही हैं। इस बहुत ज़िम्मेदार, ज़रूरी और कठिन कार्य के लिए उन्हे रियासत से एक हज़ार रुपये मासिक दक्षिणा मिलती है; और मिली है एक फिएट कार टहलने के लिए, दो जोड़ियाँ ज़ायका बदलने के लिए; एक बढ़िया महल रहने के लिए, तथा दर्जन के दर्जन दास-दासियाँ —'यू ब्लडी, ब्लैक निगर' कहने के लिए। पहले मिस महोदया भारतीय दासों पर अपनी मातृ-भाषा फ्रेंच—में गालियों की मधुर-बौछार छोड़ा करती थीं, मगर, जब से उन्हे यह मालूम हुआ कि अंग्रेज़ी राज्य में रहते-रहते 'नेटिवो' को अंग्रेज़ी गाली का स्वाद अधिक अच्छा लगने लगा है, तब से, वह भी उसी देव-भाषा मे भारतीय-भृत्यो की मधुर-भर्त्सना करती है।

ख़ैर, अब उनके शृंगार-भवन मे, एक धारा मे खड़ी, पच्चीस पंचदशियों के सामने एक बार पुन आइये। क्योंकि मिस महोदया का साधारण परिचय ता आप पा ही गये। उन रूपवती यौवनाओं के शरीर पर दूर से देखने से कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता था; पर, आप नाक न सिकोड़े, इस कथन का अर्थ यह नहीं है कि वे नग्न थीं। यदि उनके नख-शिख का वर्णन किया जाय, तो उनके पैरों मे चम्पई-रंग के मुलायम मख़मली जोड़े थे, जिन पर सोने की मोहक रेखाएँ सॅवारी गयी थी। जोड़े के भीतर भी पैर नंगे नहीं थे, उनमे उसी रंग के रेशमी मोज़े मोहकता को उन्मादिनी बना रहे थे। इसके अलावा उनके सर्वांग पर पाश्चात्य-पोशाक की वह पतली झिल्ली थी, जिसे उधरवाले 'अडरवीयर' कहते हैं। उस छाया-परिधान का रंग भी वही था। उनके दोनों हाथी दाँतों-से

हाथ स्कन्ध-मूल तक और उनकी गर्दन वक्षस्थल के उस भाग तक खुली हुई थी, जो इतना मोहक होता है कि उसके स्मरणमात्र से 'विश्वामित्र पाराशर,' प्रभृति की कठिन समाधि भी डावाँडोल हो जाती है।

उस शृङ्गार-सदन में बिजली की अनेक छोटी-बड़ी, हरी बत्तियाँ चाँदनी-सा माया-मय जाल पसारे हुई थीं। उस प्रकाश में, उस क्षुद्र परिधान मे, वे नवनीत-कोमलांगिनियाँ अपने रूप से आप ही जलती हुई मोमबत्तियो-सी दिखायी पड़ती थीं। मोम उनका तन था, ज्योति उनका रूप था और विलायती ढंग से साफ किये हुए उनके श्याम-सुवर्ण, केश धूम्र की धूमिल, किन्तु उस रूप के साथ कितनी उज्ज्वल, रेखाओं से थे।

११ बजे रात...

जो अवस्था इस विख्यात बीसवीं सदी की है, ठीक वही हमारे श्रीमान महाराजाधिराज की भी है। उनका जन्म, हमारे स्वर्गवासी महाराज के सुशासनकाल मे, सन् १९०१ ई० की १ जनवरी को, रात्रि के १२ बजकर १ मिनट पर हुआ था। वह उत्साह, मंगल और तान-गान की—जगमग—पिछली रात हमे खूब याद है, खूब मजे मे याद है और यह भी याद है कि उसी दिन इस कान्तिमयी, अल्हड़ उन्मादिनी बीसवीं सदी ने भी अपने अनोखे अस्तित्व का 'अ' देखा था। इसी से तो, कभी-कभी हमारे मन मे ऐसा विश्वास बढ़ने लगता है, मानो हमारे वर्तमान महाराज इस बीसवी सदी ही के लिए पृथ्वी पर पधारे हो और महारानी बीसवीं सदी प्रकटित हुई हो हमारे भानु-कुल-भूषण के लिए।

अ...ह...! फिर उस त्रेता-युग के भानु-कुल की याद आ गई। मिस मिनी महादया का कहना है कि कलियुग के लेखकों—खास कर गल्प-गढ़कों—मे सबसे बड़ी कमी यह है कि वे बात-बात मे

भानुकुल की चर्चा चला-चलाकर इस युग के विकसित पाठकों की खोपड़ी खाली कर डालते है। मगर हम तो लाचार है उस कुल को स्मरण करने के लिए। क्योंकि हमारे मालिक, महाराज उसी वंश मे उत्पन्न हुए है, जिसके एक प्रतापी राजकुमार रामचन्द्र थे, जो त्रेता युग मे, 'नवमी तिथि मधुमास पुनीता' मे बाबा तुलसी के कथनानुसार 'भक्त, भूमि, भूसुर, सुरभि, सुर हित लागि' प्रकट हुए थे।

रामचन्द्र पण्डित-प्रवर रावण की लंका की ओर भी गये थे। ऐसा हमको कुछ-कुछ स्मरण है। और वह इसलिए स्मरण है कि हमारे महाप्रभु भी एक बार लंका-यात्रा कर चुके है। अभी पिछले ही साल की तो बात है। आ हा! आपको मालूम नहीं? हमारे प्रजा-पाल की सीलोन यात्रा मे गत वर्ष बड़े-बड़े गुल खिले थे। दस लाख रुपये, तीन महीने के लंका-प्रवास मे, राज्य के खजाने से उसी तरह उड़ गये, जैसे चक्रवर्ती दशरथ के पुत्र के अनन्त बाणों से ऋषिवर 'पुलस्त' के नाती के अनन्त मस्तक उड़े थे.... त्रेता युग मे!

कहा जाता है, सीलोन से चलते-चलते हमारे पृथ्वीपति ने कुछ ऐसा कमाल कर दिखाया कि हमारे राज्य के इतिहास का मुँह चमाचम हो गया। जो काम आज तक किसी भी भानु-वंशी से न बन पड़ा था, उसे हमारे क्षत्रिय पार्थिव परमेश्वर ने चुटकियो मे कर दिखाया। वह अभूतपूर्व वीरता से किसी सिंहाली मुसलमान की युवती 'दुहिता' को हर लाये है।

वेद-विद रावण ने मायामयी वैदेही का हरण किया था, मगर खाक किया था। अरे जब भिखारी बन गये और रखवाले गृद्ध द्वारा गिरफ्तार किये जाकर ज़लील बनाये गये तभी उनकी बुद्धि का दीवालियापन इतिहास पर प्रकट हो गया। ब्राह्मण जो थे रावण, इसी से वह महावीर और महापडित होकर भी, स्त्री-

हरण-कला को न जान सके।

इधर हमारे प्रभु ने एक दिन अपनी मोटर पर से उस सिंहालिनी को देखा और उस घटना के ठीक छत्तीस घण्टे के भीतर वह परम रूपवती मुसलमान दुहिता उनके सामने थी। उन्हें रावण की तरह अपनी लंका भी न छोड़नी पड़ी। वह अपने सुवर्ण-मंडित होटल में आनन्द से बैठे ही रहे और उनके दल के दूसरे वीरों ने, दो 'डॉज ब्रदर्स' की सहायता से, उस लड़की के बाप के घर पर चढ़ाई कर, उसका बरबस हरण कर लिया! जटायु गृद्ध, सो भी वृद्ध, ताड़ गया था पंडित रावण की बेवकूफी को। मगर उस सिंहाली मुसलमान के पास-पड़ोसी पुलिसवाले न ताक सके महाराज के 'डॉज, भाइयों' की ओर। मोटर देखी उन्होने, जैसे जटायु ने रावण का रथ देखा था, मगर देखने के पूर्व उनके हाथ उनकी वर्दी की जेबों में थे। शायद, भक्तों के हृदय की तरह, उन जेबों में भी कोई 'उज्ज्वलता' थी मगर, हमारे प्रभु की। अस्तु, उज्ज्वल-पक्ष को अपनी मुट्ठी में कर, पुलिसवालों ने कामिनी, मोटर और राजा का त्याग उसी तरह 'हाथ उठाकर' कर दिया जिस तरह महर्षि या राजर्षि अथवा ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने अपनी ही लड़की शकुन्तला का त्याग किया था।

लंका की उस ललना का नाम 'चाँदनी' है, ऐसा मिस मिनी के मंगोली-मुख से एक दिन सुना था। साल भर से वह चाँदनी मिस महोदया ही के महल में, अपने परिवार से छिटकी हुई, ठंडे मन से चमक रही है। वह ऐसी कुछ सुधा-मयी, मादक और मोहिनी है कि स्वयं मिस मिनी भी उसके मयकं-मुख पर मोही-सी मालूम पड़ती हैं। तभी तो उन्होंने एक दिन महाराज को चाँदनी-हरण पर बधाई दी थी। कहा था—आपने, दो युगों बाद ही सही, मगर ख़ूब बदला लिया लंकेश्वर की मूर्खता का। बेशक आप भानु-

वंशी ! धन्य है !

मगर, वह चाँदनी अजीब पगली है। साल भर से महाराज के प्रेम-प्रस्तावों पर नफरत से नाक सिकोड़ रही है। वह मिनी को बहुत मानती है, क्योंकि मिस भी उसे बहुत मानती है। उनके आज्ञा या आदेशानुसार वह देशी और विदेशी नृत्यों का अभ्यास कर चुकी, कुछ-कुछ गुनगुनाने भी लगी, मगर, मिस महाशया के महल के बाहर, महाराज के सामने, जाने को वह कभी तैयार ही नहीं होती। उसने कहीं से एक छुरा पा लिया है। वैसा ही छुरा, जैसे की चर्चा अक्सर कहानी कहने वाले किया करते है। यदि कभी महाराज स्वयं मिनी के महल में, मदहोशी में, चाँदनी से खेलने की धुन मे आ पड़ते हैं, तो, वह उसी छुरे को अपनी उभरी हुई छाती पर तानकर खड़ी हो जाती है। "एक कदम भी और आगे बढ़े . . ." वह गरज पड़ती है—"तो इस चाँदनी को छूरे के घाट के पार ही पाइयेगा। खबरदार, जो मेरे तन को कभी हाथ लगाया। यह तन तो मेरे प्यारे 'वाहिद' का है, जो जावा मे चीनी का बहुत बड़ा रोज़गार करते हैं। इसे वही छू सकते है, आप नहीं। भले आप महाराज हो या बादशाह।"

जब जब बात यहाँ तक बढ़ जाती है, तब-तब मिस महोदया महाराज को सँभालती है, जैसे मन्दोदरी रावण को सँभाला करती थी। वह महाराज को चाँदनी के आगे ही वचन देती है, कि प्रभो! इस बार इस पगली को—अपनी वीरता की ओर देखकर—क्षमा कर दें। यह शीघ्र ही आपकी महिमा पहिचान लेगी, और आपकी छाती की छाँह मे झूम-छननन कर, छिप जायगी। अभी इसका सिन ही क्या है, अक्ल ही कितनी है?

मगर अब महाराज मानने वाले नहीं। परसो ही उन्होने मिनी के कानों मे फुसफसा दिया है, कि चाहे जैसे भी हो, इस

शारदी-पूर्णिमा को वह अवश्य ही चाँदनी की सुधा लूटेंगे। अस्तु, अपने पद की प्रतिष्ठा रखने के लिए, पूर्णिमा के पूर्व ही, विलास-भवन की निरीक्षिका महोदया को चाँदनी पर कोई न कोई जादू डाल ही देना चाहिए।

आज शारदी-पूर्णिमा ही तो है ? क्या आप अपने देश की इतनी-सी बात भी नहीं जानते ? महाराज का सबसे सुन्दर उद्यान वह, सामने, चाँदनी मे देखिये—कैसा सजाया गया है। अभी हमारे नरेन्द्र अपनी 'रोल्स राइस' पर घूमने गये हुए हैं। वह ठीक ग्यारह बजे रात, इस उद्यान मे पधारेंगे—अपने दल-बल के साथ। आज यहाँ पर मिस मिनी के 'मैनेजमेन्ट' में अनोखे-अनोखे गुल खिलेगे। और .. .और चाँदनी आज ही लूटी जायगी।

१ बजे रात...

९ बजे रात को, उन पचीस पंचदशियों के साथ, मिस मिनी जिस कमरे में थीं, यह कमरा उससे बिलकुल भिन्न है। वह ड्रेसिंग-रूम था, यह ड्राइंग-रूम है। उस समय की युवतियों के परिधान मे और इस समय के शृङ्गार में भी भारी अन्तर हो गया है। इस अमीरी से आवृत्त कमरे मे नवेलियाँ छः-छः के गुच्छे में बँटकर, चार बड़ी-बड़ी, गोल-मारबली, मेजों की चारों, ओर बैठी खिलखिला रही हैं।

इन चौबीस चारु-मुखियों से दूर पर वह पच्चीसवीं भी, एक चौकोर और पीले मारबल की मेज़ के पास, मिस मिनी के साथ बैठी है। उसका वेश-विन्यास अन्य चौबीसियों से कहीं भिन्न और मोहक हुआ है।

उन चौबीसियों के शृंगार से उन चीज़ों के अलावा, जिन्हें आप जान चुके हैं, केवल दो चीज़ें अब और बढ़ा दी गयी हैं। आबेरवाँ के, धानी रंग के, ज़रीदार, घुटने तक लम्बे, ज़रूरत से

ज्यादा चौड़े आधी बाँह के कुरते, जिनकी बाँहों पर चार-चार अँगुल चौड़ी अगूरी लता लहरा रही है, और उनके कमर तक झूलते हुए सुकेशों पर सुशोभित मालती और अशोक के धवल और सुगन्धि-मय पुष्पों के मनोहर मुकुट। उन पारदर्शी-कुरतों के बाहर 'अंडर वियर' के भीतर कसी हुई उनकी सौन्दर्य-मयी जवानी मानो फटी पड़ती है। उन मालती और अशोक की गलबैयों से गुँथे हुए, ज़रा पाश्चात्य-कला के आधार पर रचे गये मोहक मुकुटों ने तो सुन्दरियों के रूप का भाव कुछ-से-कुछ कर दिया है। अब वे परियाँ मालूम पड़ती हैं; इन्द्र के अखाड़े की!

उस पच्चीसवीं को हमारे नरपति की विलास-भवन-निरीक्षका ने 'परशियन' पोशाक से सँवारा है। बढ़िया सुफ़ेद रेशम का, उमर खैयाम के युग का कामदार पाजामा, गुलाबी रंग का रेशम और ज़री के काम का कीमती कुरता, उस पर धानी रंग के मुलायम मखमल का चोलीनुमा जाकिट और सबके ऊपर जोगिया रंग का, उसी झीने आबेरवाँ का हलके पर सुन्दर काम का दुपट्टा। यद्यपि उसके माथे पर वह मालती-अशोक मुकुट नहीं है, फिर भी, वह उन सब मुकुटिनियों की महारानी मालूम पड़ती है।

वह पच्चीसवीं ही तो हमारे भानु-कुल-भूषण द्वारा हरिता और यौवन से भरिता सुन्दरी चाँदनी है। आज पहली बार, मिस मिनी के लाख-लाख मनाने से, महाराज के सामने वह जायगी, उन चौबीस मुकुटिनियों की महारानी की तरह-हाथ में बढ़िया बिल्लौरी-सुराही, रंगीली मदिरा और 'कटक' के कारीगरों का बनाया हुआ अनमोल गंगा-जमुनी गिलास लेकर, मिस मिनी द्वारा सिखायी और बार-बार 'रिहर्सल कराया गयी किसी ख़ास अदा से। चाँदनी के पीछे सौन्दर्य-भरी, उज्ज्वल और मादक छाया की तरह, वैसे ही सुराही गिलास लेकर, दो दलों में विभक्त होकर, वे चौबीस चाँदनियाँ भी हमारे अन्नदाता के सामने चलेंगी।

आज शरद्पूनो है न ! बड़ा मज़ा रहेगा। ऊपर चाँद, नीचे चाँद .. चारों ओर चाँदनी ही चाँदनी चमकती फिरेगी।

"हमें वहाँ जाकर क्या करना होगा ?"—यह सवाल लंका की ललना ने पेरिस की मंगोल-मुखी मिस मिनी से, उक्त साज-शृंगार के पहरों पूर्व किया था। मिस ने मुस्कराते मुख से समझा दिया कि और क्या करना है, मैंने जो वर्षभर तक तुम्हें 'वह सात घूँघटो-वाला नाच' सिखाया है, बार-बार 'रिहर्सल' कराये हैं ! उसी को महाराज के सामने नाचकर दिखा देना। यदि तुम सफल हुईं, इस परीक्षा में, तो बस, पुरस्कार है और तुम्हारी मुक्ति का समाचार। इसे झूठ न समझना बहन ! मैं महाराज के बादशाही मिज़ाज को खूब जानती हूँ। वह ज़रूर तुम्हें तुम्हारे परिवार के पास और प्यारे की भुजाओं में भेज देंगे। उन्होंने मुझे वचन दिया है।"

"और बहन, तुम जानती नहीं ? महाराज भानुवंशी हैं, और इस देश के उस वंश की विरदावली बहुत विशद है। ये लोग वचन देकर, ख़ासकर औरतों को, कभी मुकरते नहीं, चाहे महाराज दशरथ की तरह जान भले ही दे दें।"

"उस नाच में मदिरा और सुराही का भी प्रयोग होता है। तो क्या महाराज को ढाल-ढालकर देना होगा। पी लेने पर वह होश में न रहे तो ?" चाँदनी ने शंकित-भाव से अपनी बड़ी-बड़ी सुरमयी आँखें झुकाकर मिस मिनी से पूछा।

"तो क्या डर है बहन ? इसीलिये तो मैंने तुम्हें दूसरे वेश में सजाया है। महाराज की मदहोशी का शिकार बनेंगी वे चौबीस मुकुटिनियाँ, तुम नहीं। तुम तो मजलिस की महारानी की तरह घूम-घूमकर और नाच-नाचकर, केवल महाराज को ढालोगी। और फिर—ओ हो ! मैं भूल गई थी उसको। तुम अपना छुरा तो ज़रूर ही कमर में रखो ! जब तक वह तुम्हारे पास रहेगा, तब तक तो तुम्हारा तन सुरक्षित है ही। महाराज तुम्हारे मिज़ाज को खूब

समझ चुके है। मेरी बात मानो। वह तुम्हे भूलकर भी न छेड़ेगे। बस, नाचो आज सखी, वह सात-घूँघटवाला पुराना 'रोमन' नाच, ज़रा मस्ती से चमककर !

इसी समय ड्राइंग-रूम के द्वार पर किसी की धीमी थपकी सुनायी पड़ी। मिनी महोदया दौड़ी दरवाज़े की ओर। वह महा-राजाधिराज के प्राइवेट सेक्रेटरी साहब थे। स्वयं यह सूचना देने आये थे कि अब रात आधी से ऊपर बीत गयी, महारज उतावले हो रहे है। व्यर्थ के दरबारी विदा कर दिये गये। अब केवल चुने-चन्द रह गये है। उद्यान मे चारो ओर शरद पूर्णिमा की चॉदनी छा गयी है। महाराज व्यग्र है। वह अपनी चारोओर सिंहल के उस मुसलमान के घर की 'चॉदनी' की मादक-छाया चाहते है।

मिस मिनी ने मोहकता से सेक्रेटरी के कान से अपने रँगे-होठ सटाकर और ठुड्ढी से उसके कपोल पर सिहर की एक रेखा खींचकर कहा, "आप चलें महोदय। हम अब हाज़िर ही होती है। ज़रा उन छोकरियो को शरबत के बहाने वह ख़ास नशा भी पिला दूँ। जिससे ऐन मौके पर कोई पगली आपके उस नंगे देवता की पत्नी के चरित्र का पाठ न करने लगे जिसका नाम मुझे इस वक़्त भूल रहा है।"

३ बजे रात...

त्रेता युग से 'मघवा महामलीन' माना जाता था। इसके हमारे पास पोथो प्रमाण हैं। वह विशेष व्यक्तियो की विशेषताओ की वृद्धि से विकल हो उठता था और उसके साथ-ही-साथ उसका इंद्रासन भी, कायर के दुर्बल कलेजे की तरह, कॉपने लगता था। मालूम नहीं हमे, वह त्रेतावाला मघवा मर गया या अभी तक अमर-का-अमर ही है। मगर, मर ही गया होगा बेचारा। अनुमान तो यही अटकल लगाता है। क्योकि यदि वह अभी तक सहस्र लोचन होता, तो हमारे शूर-शिर-मुकुट-मणि, महिमा-मय महाराज

की विलास-विभूति की विशेषताएँ अवश्य ही देख लेता। इन्हें देखकर भला वह अपने आपे मे रह सकता था? असम्भव। कदापि नहीं। ये सुन्दरियाँ, ये सुविधा से चुनी हुई राज्योद्यान की पुष्प-परियाँ, ये गिलास और ये सुराहियॉ, यह शराबो की रंग-बिरंगता! अरे इन्हें यदि वह महा-मलीन मघवा देख पाता, तो अपनी ही छाती पर वज्र मारकर रह जाता। यही मिस मिनी का भी मत है। पर सुनिये तो। आप 'मघवा' के माने जानते हैं? हमने तो सुना है कि 'मघवा' का अर्थ 'विड़ौजा' है।

शारदी पूर्णिमा को जिसकी ऑखो के सामने चाँदनी की लूट हुई, बल्कि उस लूट को अधिक-से-अधिक मादक और आकर्षक बनाने का जो सब से प्रधान उत्तरदायी है, वह उस पुराने मघवा का मशहूर मित्र है। उसका नाम चन्द्रमा है। वही तो ऋषि गौतम की रूप-मयी अहल्या के बंटाढार के समय मघवा के साथ था। वही तो द्विज-राज कहा जाता है। वही तो मयंक मौलि के माथे पर चढ़ा रहता है। मिस मिनी ने अपने हिन्दू खानसामे की आठ आनेवाली संक्षेपक रामायण से उसकी कहानी सुनी है। वह बहुत हॅसती रहीं, चन्द्रमा के ऊँचे पद और नीचे कर्मों पर। उनका कहना है कि जब सीता के लिये रावण, द्रौपदी के लिये कौरव और किस-किसको अपमानित करने के अपराध में अवतारों द्वारा कौन-कौन मारे ही गये, तब यह द्विज-राज अब तक क्यो जीता है? इसका सुफैद और कलंकित सिर क्यों नही आकाश के कन्धे पर से काट फेका गया? तिस पर तो मिस महोदया यह नहीं जानतीं कि वह बृहस्पति की पत्नी तारा का पति भी—'गुरु-तिय-गामी' भी है। यदि उन्हे यह बात मालूम होती, तो वह अवश्य ही, व्यग्य से मुस्करा-मुस्कराकर किसी हिन्दू सरदार या स्वयं श्रीमान के सामने, चन्द्रमा पर लाख-लाख फब्तियॉ कसती।

शारदी पूर्णिमा को शराब, सुराही और गिलास लिये, चौबीस

सुन्दरियों के आगे तथा मिस मिनी के पीछे, जब चाँदनी महाराजाधिराज के सामने आई, उस समय उस उद्यान में चारो ओर सुफ़ैदी-ही-सुफ़ैदी छाई हुई थी। उद्यान और चौबीस चुने हुए हिन्दू-मुसलमान, सम-वयस्क सरदारो के बीच मे हमारे भानुकुल-भूषण और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी महोदय सुफ़ैद मारबल के चौकोर चबूतरे पर बैठे सुरा-सुन्दरी का सेवन कर रहे थे। उसी समय तो मिस मिनी के आदेशानुसार वे पच्चीसो पंचदशियाँ न जाने कौन-सा पीने और ढालने का गाना गा-गाकर वह अद्भुत पश्चिमी-नाच नाचने लगीं। उनमे सब से आगे, जोगिया डुपट्टा ओढ़े, लंका की वह मुसलमान लड़की 'सात-घूँघटवाला' परम मोहक और उन्मादक नाच नाच रही थी।

महाराज ने देखा मिस मिनी के मंगोली-मुख की ओर, और, मिस के मुख ने मुस्कराकर कुछ इशारा किया उन चौबीस युवतियो की ओर, जो मुकुट पहनकर चाँदनी के पीछे मदहोश-सी थिरक रही थीं। उनमे से दो, नाचती-नाचती और सुराही गिलास सँभालती हुई, हमारे प्रभु की ओर बढ़ीं। पास पहुँचकर, ढालकर, दोनो ओर से उन्होंने महाराज को मदिरा की मस्ती से महका दिया। उनके हाथ के गिलास खाली कर, महाराज ने उन्हे अपनी दोनो ओर बैठा लिया। वह उनके इस या उस मोहक अंग से खेलने लगे। उस समय उनके आगे लंका की चाँदनी तो सात घूँघट का नाच नाच रही थी, और ऊपर की ज्योत्स्ना बिल्कुल नंगी खड़ी मुस्करा रही थी!

थोड़ी देर तक महाराज उन युवतियों से खेलते रहे, बाजे बजते रहे और नाच होता रहा। इसके बाद उन्होंने पुकारा "कल्याणसिंह! नाहरसिंह!" उक्त नाम के सरदार श्रीमान के सामने आकर कर-बद्ध, मगर नशे मे झूमते हुए, खड़े हो गये। हमारे उदार प्रभु ने उन दोनो युवतियो को उन सरदारो के हवाले

किया—"अब इनसे तुम खेलो।" उसी धवल चाँदनी में, मदहोश सरदारों ने अपने-अपने हिस्से की सुन्दरी को गोद मे उठा लिया।

तीन बजे रात तक यही सिलसिला जारी रहा। दो-दो कर वे सुन्दरियाँ पहले हमारे प्रभु के सामने आतीं, उनके आगे अपना यौवन और सुराही उँडेलतीं और फिर, किसी 'सिंह' या 'खाँ' की गोद में ढालते-ढालते बेहोश हो जातीं। धीरे-धीरे चौबीसों सुन्दरियाँ एकएक सरदार की बग़ल मे हो गईं। और मिस मिनी महोदया प्राइवेट सेक्रेटरी के पास। अब महाराज अकेले रह गये झूमते, और चाँदनी रह गई अकेली नाचती—वह सात घूँघटवाला नाच! अब प्रभु उसे अपने पास देखने के लिये व्यग्र हो उठे।

मिस मिनी ने, सेक्रेटरी के कपोल से अपना मंगोली-मुख सटाकर, चाँदनी की ओर कुछ इशारा किया। वह नाचती-नाचती ठिठकी एक बार, मगर फिर, तुरन्त ही, अपने को सँभालकर, अपनी कमर की रत्नजटित पेटी और छुरे की ओर निहारकर, बढ़ी महाराज की ओर ढालने के लिए। उसे अपनी ओर आते देख महाराज उत्तेजित होकर खड़े हो गये। उनकी बड़ी-बड़ी आँखे नशे की गर्मी से लाल हो रही थीं।

चाँदनी ने ढालकर सुरा-पात्र, नीची आँखो से, महाराज की ओर बढ़ाया। मगर, अब वह पागल थे। उन्होने उसके हाथ से गिलास छीनकर, ज़ोर से, एक ओर फेंक मारा और लंका की उस मुसलमानिन को बरबस खींचकर अपनी गोद मे ले लिया।

मगर, महाराज की बलिष्ठ-भुजाओं मे फँस जाने पर भी चाँदनी असावधान नहीं थी। उसने घटना का रुख देखते ही हाथ की सुराही फेककर छुरे को सँभाल लिया था। इसी से तो महाराज की मदान्धता के पूर्व ही उसने अपनी उभरी हुई छाती पर छुरे का एक भरपूर वार किया।

पर यह क्या ! वह टूटकर दो टुकड़े हो गया ! क्या वह चाँदनी का असली फौलादी-रक्षक नहीं था ? सब-के सब इस घटना पर खिलखिलाकर हँसने लगे। सबकी नज़र एक साथ ही मिस मिनी के मगोली-मुख पर जाकर आश्चर्य से ठिठक गई। याने, यह तुम्हारी ही माया की महिमा है, मिस महोदया !

अब भानु-कुल-भूषण अपना सारा बल लगाकर उसको वश में करने की चेष्टा करने लगे। मगर वह पगली काबू मे आई ही नहीं ! बराबर उनके कठोर पजे से छूटने की चेष्टा करती रही और रो-रोकर दोहाई देती रही—"महाराज ! मुझे बेइज्ज़त न करो। क्योंकि यह तन मेरे प्यारे वाहिद का है। वह मेरे बचपन के सखा और जवानी के मालिक है। जावा में चीनी का बहुत बड़ा रोज़गार करते है। मुझे छोड़ दो, बख्श दो, ग़रीबपरवर ! मैं आपकी बेटी और बहन हूँ।"

मगर, महाराज तो होश में थे ही नहीं। वह बराबर उस सिंहलिनी से हाथा-पाई करते रहे, उत्तेजित हो-होकर। पर वह वश में आती ही न थी। इसी बीच मे प्रभु ने एक बार उसके न जाने किस अंग को धोखे से चूम लिया। बस, फिर क्या था। वह चाँदनी तो आग हो उठी। वह भूल गई अपनी अबलता और हमारे प्रजा-पाल की प्रबलता को। "सुअर के बच्चे, हत्यारे ! शैतान !" कहकर उसने ताबड़तोड़ कई तमाचे महाराज के मदिरा से लाल-लाल गालो पर जड़ दिये। ओह ! वह सिंहलिनी क्या थी, पूरी सिंहनी थी। एक बार सारी मजलिस सन्न हो गई।

एक क्षण और—और धड़, धड़ ! पिस्टल की आवाज़ से सारा उद्यान गड़गड़ा उठा। उत्तेजित भानु-कुल-भूषण ने चाँदनी की उभरी हुई छाती मे गोली मार दी। वह जहाँ-की-तहाँ बिखरकर धूमिल हो गई !

सात-घूँघटों के नाच के पुरस्कार रूप में हमारे परमेश्वर-स्वरूप पृथ्वीपति ने चाँदनी को मुक्त कर दिया। मिस मिनी ने ठीक ही कहा था, भानुवंशियों की विरदावली बहुत विशद है। वह वचन देकर कभी मुकरते नहीं।

छिपाता हुआ। चौड़े में छपाता हूँ एक मैं—बहुजन हिताय, बहु-जन सुखाय।

यह कहानी यों है : (मैं जल्दी करता हूँ इसलिए कि हैरत से रुका किसी पाठक का दम कहीं घुट न जाय !)

नाकपुर—आप जानते है ? कानपुर नहीं, नागपुर भी नहीं, नाक—नाकपुर। वह कानपुर के सौ मील उत्तर और नागपुर के पचास मील दक्षिण मे फैला हुआ है। वहीं के नामी नेता श्री कंचनराम के यहाँ उस दिन ख़ासा महा-भोज था। पर नाम उसका था चाय-पार्टी। शहर के एक हज़ार छोटे—मझोले—बड़े आदमी कंचनराम के दरवाज़े के सामने वाले विस्तृत-बाग़ में जुटे हुए थे।

"ऐसी दावत अंग्रेज़ी राज मे राजा-रईस ही दे सकते थे।"—एक ओर दो-तीन आदमी ताज्जुब से बाते कर रहे थे।

"आज कांग्रेसी-राज होने से राजा वही, जो मन्त्री हो, रईस वही, जो हो एम. एल. ए.।"

"चर्व-चौष्य-लेह्य-पेय सबका इन्तज़ाम कंचनराम जी ने किया है। दुनिया कन्ट्रोलो से जकड़ी हो; पर, मोटे नेताओं पर कोई कन्ट्रोल नहीं।"

"अगले ज़माने में विधान गढ़ने वाला राजा होता था—कानूनों से ऊपर, जो ग़लती कर ही नहीं सकता था। अब कांग्रेसी-राज में वही महान-पद बड़े, पुराने नेताओं का है। देखो न, कंचनराम को शहर के चार-के-चारों मोटे आसामियों ने घेर रखा है !"

"अजी, पाँचों घी में है—पाँचों ! चारों को ठेके, परमिट और पेपर दिला-दिलाकर मदमस्त हाथी बना दिया एम. एल. ए. जी ने, देशभक्त जी ने और देशभक्त जी को रुपये की झड़ी लगा बरसाती गोबर बना दिया चारो ने।"

"क्या कहने ! परस्पर सहयोगवाली कम्युनिस्ट प्रणाली का

सस्ता भारतीय-सस्करण।"

"आखिर इस दावत का मकसद—उद्देश्य—क्या है ?"

"ऊपरी उद्देश्य तो शहर मे दंगा शान्त होने, अमनोअमान क़ायम हो जाने की खुशी मे प्रीति-सम्मेलन है। अन्दरी-बाते क्या हैं—अन्तर्यामी ही जानते होगे।"

उक्त बातें करने वालो से काफी दूर पर नेता कंचनराम जी अपने चतुरङ्गी सगियो से चहक रहे थे।

कंचनराम—कितना भयानक था इस बार का दंगा जिसे शान्त करने मे भगवान के बाद, एक मै ही समर्थ हुआ।

कपड़ा-गल्ला-सौदागर ने खुशामद के स्वर मे दाँत निकालते हुए कहा—"भगवान के बाद नहीं, पहले श्रीमान का नम्बर है। भगवान ने प्रकट फल किसी को दिया है ? किसी भकुवे ने देखा है ? और आपके फल चखने वालो की चतुरङ्गी—सेना ! मैं तो सच कहता हूँ—आपके दर्शनों के बाद मेरी निगाहो के नीचे कोई दूसरा भगवान आता नही।"

"चापलूसी बहुत न कर।" मकानों का कान्ट्रेक्टर कड़कड़ाया बनिये की तरफ—"दंगा शुरू किया मैंने, रोका भी वन्दे ही ने और फायदा उठाया, चौचक, एम. एल. ए. जी ने ! राह का काँटा, सीने का शूल, बलवे मे समूल समाप्त हो गया सो अलग लीडरी के आसमानी-चँदोवे मे चार चाँद लगे—मुनाफे में !"

"अरे ! धीरे बोल यार !" कचनराम ने मकान कान्ट्रेक्टर को मीठे-मुँह से होशियार किया—"शुक्रगुज़ार हूँ तेरा भाई, एह-सानमन्द हूँ।"

"मिहरबानी"—कान्ट्रेक्टर बोला—"मगर मेरा कलेजा कभी-कभो नुकीली आरियो से रिदता है—कि हम जो-कुछ कर रहे है वह सत नही, असत है। प्रकाश नही, मोहान्धकार है। हम किसी को धोका दे रहे है। हम अपने को धोका दे रहे हैं। हम

सभी को धोका दे रहे है। हम किस धोके में है ? जब वह बुड्ढा प्रार्थनाओं मे ईश्वर-स्वरूप जनता-जनार्दन के सामने जन और नायकों की कमज़ोरियो पर रोता है, मुझ दुर्जन-खल-नायक का कलेजा कटने लगता है। रामभक्त-साधु को कुन्द-छुरी से हलाल करने का-सा पाप मैने किया, कि आप-जैसो की मदद से पिछले आठ महीनों में आठ लाख रुपये बनाये। आपको नज़राना क्या देना पड़ा, दिल ही जानता है मेरा या आपके पुण्य-पाप का बैंक-एकाउन्ट रखने वाला अन्तर्यामी। लेकिन मेरे आठ लाख बड़े महँगे पड़े। हैज़े मे बेटे मरे तीन, लाहौर मे दुकानें जलाई गईं तेरह ! मेरे आठ लाख महँगे। बहू छत से गिरकर मर गई। दो बेटियाँ लाहौरी-लुटेरो ने लूट लीं ! अब मेरे दिल पर हन्टरों की सटकार !!"

पजाबी को सनकते देख राजनीतिक चालबाज़ नेता का माथा ठनका। वह उछलकर उसके पास आगया, मुन्द मुस्कराता। आवेश मे आये अन्तरंगी का हाथ, मज़बूती से पकड़कर बाग़ीचे से सटे बँगले के ड्राइंग-रूम की तरफ़ खींच ले चला कंचनराम। बन्दर के पीछे दुम की तरह नेता के दूसरे चुने मित्र भी पछियाते गये।

'ड्राइङ्ग-रूम' शब्द ही फिट हो सकता है, नाकपुर के नेता-राज कंचनराम के उस पच्चीस-फुट चौड़े, पैंतीस-फुट ऊँचे, पचास-फुट लम्बे महाप्रकोष्ठ के लिए। और कैसा 'डेकोरेशन' ! बिलकुल 'ब्यूटीफुल' बंबैया-वैभव-विस्तार ! नये-ढंग के फर्नीचर जिन्हे दूर से देखिये, तो तराज़ू और नज़दीक से आज़माइये तो टेबुल कुर्सियाँ ! क्या-क्या गिनाऊँ—मैं मॉडर्न-नज़र से कम-कल्चर्ड मैन ?

कमरे में आते ही ज़रा बरसता-सा कंचनराम पंजाबी दोस्त पर उखड़ा—

"निहायत अजीब आदमी ! सरदार जी, आपको आज हो क्या गया है ?"

"मैंने एक बोतल ब्रांडी चढ़ाई है। तेरे आगे बिना पीये मुँह खोलना मेरे इमकान के बाहर की बात है। पर, कई दिनों से मैं ज़िन्दगी से बड़ा बेज़ार हो रहा हूँ। ख़ास कर जब से लड़कियाँ मेरी लूट ली गयीं—आह !"

"तो अब आप की साफ़ मर्ज़ी क्या है ? इस शोर-शराबा से फ़ायदा ?"

"फ़ायदा यही, कि हमें पश्चाताप करना चाहिए। तोबा करना चाहिए। फ्यूचर मे पाप न हों इसके लिए प्रार्थना और प्रयत्न करना चाहिए। आज ही सवेरे मेरे मन मे एक बात आई।"

"कौन-सी बात !" सभी दोस्तों ने सुनने की उत्सुकता दिखाई।

"बात यह कि आज श्री कंचनराम जी उस चित्र के ऊपर से परदा हटाकर देखे जिसके कमाल-कलाकार पर इनका विश्वास नहीं। मैं कहता हूँ जो बात चित्र में कंचनराम जी बरसों से ढूँढ़ रहे थे, वह आज उसमें नुमाया हो गई हो, तो ताज्जुब नहीं।"

"क्या बात ? कैसी तस्वीर ?? अजी वाह, कंचनराम जी ! हमें नहीं बतलाया। यह भेदभाव भी कोई दोस्ती है। हमसे ज्यादा यह जट्ट जाने ! अभी दिखलाइये वह तस्वीर ! फौरन सुनाइये उसकी हिस्ट्री-मिस्ट्री।"

सारे-के-सारे दोस्तों ने एक स्वर से आग्रह किया।

"इसकी कहानी मैं सुनाऊँ ?" पजाबी ने कंचनराम की आज्ञा चाही। कुछ गुबार निकल जाने से अब उसका आवेश हलका हो गया था। वह अब कटु नहीं, 'फ्रेंडली-मूड' में था।

नेता ने अनिच्छा से स्वीकृति दी—"सुना भाई सुना। तब तक मैं ज़रा बाहर का प्रबन्ध देखता आऊँ। पाँच मिनट का वक़्त

देता हूँ। इसी में सारा क़िस्सा मुख़्तसिर कर डालिए। इन मित्रों से क्या छिपा—क्या छिपाना? पर, विस्तार करियेगा तो कान पकड़कर 'गो आन' सुनाया जायगा।"

कंचनराम एक अनोखी-अदा से अकड़ता हुआ बाहर चला गया।

"कंचनराम के बाप नाकपुर के नामी जौहरियो मे।" सिख सरदार कान्ट्रेक्टर ने शुरू किया—"हिन्दुस्तान की सारी छोटी-रियासतों से उनका सम्बन्ध। रोज़गार उनका राजाओं को जवाहिरात, गहने, इत्र, एक की जगह दस दामों पर, उधार देना और फिर सारे साल रुपयों की तहसील में चक्कर काटना। कभी पूरबी-रजवाड़ों में, कभी पश्चिमी। नाकपुर की कोठी में यानी इसी बँगले में, उन्होंने सोना-चाँदी की झड़ी लगा दी थी; रतनों की फुलझड़ी! कंचनराम के पिता लक्ष्मी के वरद्-पुत्रों में थे। कमाते थे समुद्र की तरह—प्रदेश-प्रदेश की मीठी, मुनाफ़ेदार, नदियों के घाटों का पानी पचाने में समर्थ; पर, प्यासे की पुकार से उदार वह कभी न बन सके। खारे, स्वार्थी, ठंडे। जौहरी, ज्योतिर्मय, पर वज्र-कठोर!

"कंचनराम के बाप पिघले कभी, तो केवल एक आदमी से। उनका पवित्र नाम—हम अच्छी तरह जानते है—महात्मा गांधी। महात्मा जी को एक बार अपनी कोठी पर बुलाकर कंचनराम के पिता ने सवा लाख रुपया दिया था। वह बहुत बीमार थे। उन्हीं दिनों महात्मा जी नाकपुर पधारे थे। कंचन के पिता के मन मे आया कि अगर किसी तरह महात्मा जी के चरण उनके बँगले तक आ जायँ तो वह बच जायेंगे। महात्मा जी ने भी आना मंजूर किया। रुपयो के लिहाज़ से कम, बीमार को ढाढस बँधाने के उदार विचार से ज्यादा। महात्मा की स्वीकृति-सूचना पाते ही—मेरी आँखों देखी बात है—कंचनराम के पिता आधे-चंगे हो गये।

स्वयं बिस्तर से उठकर सारा घर खद्दर से मजवाने लगे। फौरन-से पेश्तर अपने खास 'आर्टिस्ट' चित्रकार ख़ुर्शेद ईरानी को बुलाया। बोले दो चित्र बनाने है—एक महात्मा गांधी का और दूसरा एकलौते पुत्र कंचनराम का। ईरानी ने दिक्कत सुनाई। उसके पास काग़ज़, केनवास, कूँची, रंग, कुछ भी नहीं। क्योंकि उसकी 'मॉडल-छोकरी' शमा ने पिछली रात चित्रकारी का सारा सामान इस तान से जला दिया था कि—"शैतान की मार! दिन-रात की तस्वीर-साज़ी तुमको बेदीद कर दे तो?" इस पर बूढ़े जौहरी ने 'केनवास' और 'कलर' के लिए सारा शहर छनवा डाला पर ईरानी कलाकार के काम-काबिल चीज़ें न मिल सकीं। मिला भी, तो इतना थोड़ा सामान जिससे, चित्रकार के कथनानुसार, एक ही चित्र बनना मुमकिन था। इस पर कंचनराम के पिता ने कहा—कि महात्मा जी ही का कोई अद्भुत-पोज़ तैयार किया जाय! ध्यान रहे, दस ही मिनट वह ठहरेंगे। इतने ही मे स्केच तैयार हो जाय।

मगर, हमारे नेता साहब बचपन से ही हठीले। अड़ गये बाप से कि महात्मा जी की नहीं, उनकी तस्वीर तैयार की जाय। हज़रत सर पटकने लगे, जान लेने-देने पर उतर आये! लाचार, कलाकार ने केनवास के दोनो ओर चित्र उरेहने का निश्चय किया। एक तरफ हठीले कंचनराम का और दूसरी तरफ दृढ़व्रत महात्मा जी का। कंचनराम नौशे की तरह बन-ठन कर आये। आँखों मे सुरमा, जुल्फो मे भँवरे, सर पर रतन-बहार-ताज—कश्तीनुमा—कमर में कटार-धारदार! कमसिन कंचनराम आते ही कलाकार से मचल पड़े— "पहले मेरी तस्वीर बनाओ, फिर किसी और की। नहीं तो!" नंगी-कटार दाहिने हाथ मे शोखी से सुधारकर कंचन-राम ने कलाकार का खून करने का भाव दर्शाया और बूढ़े ईरानी ख़ुर्शेद की आँखों मे बेवकूफी की माशूकाना अदा खिंच गयी!

'केनवास' पर कोयले की करामात आँखें खोलकर कुछ बोलने का रंग बाँधने लगी। इसी वक़्त बाग़ीचे से ठंडी हवा की तरह सन-सनाती हुई ख़बर आयी—"महात्मा जी आ गये!"

पर, ख़ुर्शेद कंचनराम की बाँकी-अदा के चित्रण में ऐसा तन्मय था कि ग़ालिब के लफ़्ज़ों में "खींचता था जिस क़दर उतना ही खिंचता जाय था।" और कंचनराम के कानों में भी युगावतार के आगमन की भनक न पड़ी। चित्रकार खींचने मे मस्त, कंचन खिंचवाने में—"माशूक शोख़ आशिके दीवाना" वाला मामला निर्विकृत-भाव से सामने था। महात्मा जी की नज़र भी आते ही कंचनराम पर पड़ी! पर, ख़ुर्शेद और गांधी के नुक़्ते-नज़र में दुनियावी-ग़ुबार और जन्नती-हवा का अन्तर! कलाकार मस्त हुआ था कंचनराम कमसिन की बाँकी अदा पर। महात्मा खिंचे कटार की धार से। शायद दोनों की हठयोग-भरी मुद्रा भी कर्म-योगी को कौतूहलकारी मालूम पड़ी। वह कलाकार से पहले निकट आये कंचनराम के—जिसके हाथ में घातक शस्त्र था।

"यह क्या!" प्रश्न करते-करते महात्माजी समझते-से सँभले—"अपना चित्र सजवाने में तुम इतने मशगूल कि आवागमन तक का ज्ञान नहीं! अज्ञानी तो बहुत देखे, पर, ध्यानावस्थित होने की ताक़त काफी है तुम में। दरिद्रनारायण पर ध्यान दो! देश का ख़्याल करो। खुद-साज़ी और खुद-बीनी में कोई सत नहीं, कल्याण नहीं, गति नहीं। यह कटार किसी ग़रीब घसियारे को दे दो। वह इससे, गला काटने की जगह पेट भरने का काम लेगा। पहनो सादे कपड़े। नौरतन-टोपी हमारे चतुर्दिग की ग़रीबी में ग़ुलामी की बर्दी-सी है। उतारो इसे। उतारो उसे। खद्दर का नया चोला चैतन्य चढ़ाओ!"

और आप न मानें, पर मैंने जो बात आँखों देखी, कैसे एत-बार न करूँ। ख़ुर्शेद अभी तक केनवास और कोयले ही के

चक्कर में था। उसका ध्यान गांधी जी की तरफ तब गया जब मॉडल देखने के विचार से केनवास से कंचनराम की तरफ उसने गरदन मोड़ी। यह क्या! पहली सूरत ही ग़ायब! वह नक़्शा ही न रहा!

उस वक़्त गांधी जी से प्रभावित हो कंचनराम अपने तन के रेशमी कपड़े उतार रहे थे—किमख़ाब की अचकन, रेशमी क्रेप की क़मीज़। कटार और कलगीदार, कश्तीनुमा-टोपी पहले ही से ज़मीन सूँघ रही थी। अब खुर्शेद की नज़र महात्मा जी पर पड़ी और उनके विचित्र-दर्शन चेहरे पर गड़ी-की-गड़ी रह गयी। उसे वह चेहरा शाही मालूम पड़ा, बादशाही नहीं। ख़ूबसूरत न होते हुए भी गांधी जी का नक्शा कलाकार ख़ुर्शेद के एक ही लफ्ज़ में 'दिलफ़रेब' था। कंचनराम की शक़्ल जितनी ही कारीगरी से बनाई गयी थी, महात्माजी की उतनी ही लापरवाही से, पर, उस लापरवाही मे क्या कारीगरी खुर्शेद ने देखी! कैसा कमाल पाया!

इस बार वह कंचनराम को भूल गया। गांधी जी का रूप कलाकार ख़ुर्शेद की आँखों मे कंचनराम से शत-प्रतिशत अधिक कलामय था। कचनराम इसलिए सुन्दर थे कि विधना ने उन्हे सुन्दर बनाया था, मगर गांधीजी विधाता की लापरवाही के बावजूद सुन्दर थे।

वह कंचनराम को भूल अब गाँधी जी का 'रफ़-स्केच' केनवास पर बनाने लगा। लेकिन गांधी जी टाइम के पाबन्द। दस मिनट पूरे हुए और वह चल दिये, चुपचाप। माशूक़ का पोज़ और आशिक़ का कम्पोज़—बिगाड़कर। बिना कुछ कहे महात्मा ने भौतिक-भावुक-कला के प्रति अपनी राय कह दी मानो। ख़ुर्शेद ग़म खाकर रह गया। ग़म खाकर इसलिए कि इतने बड़े करेक्टर आर्टिस्ट ने ख़ुर्शेद के चारकोल-स्केच की तरफ़ उपेक्षा से भी

नहीं देखा ! उसने कंचनराम का चित्र जिसकी अभी सुकुमार रेखाएँ मात्र उभरी थीं, ऐसा तैयार किया था जिसके आगे विलायती 'ब्लू बॉय' का आर्टिस्ट भी फीका नज़र आये। सोचा उसने—बाज़ार में आने तो दो कभी, तस्वीर मे ज़रा रंग तो भरने दो, जान तो आने दो।

"ख़ुर्शेद ने यह सब दूसरे दिन मुझे बतलाया। वह मेरा दोस्त है। उससे अक्सर मैं नक़्शे सुधरवाता हूँ। ख़ुर्शेद का दिल-जैसे दर्पण। दर्पण तो अपारदर्शी, कलाकार का दिल पारदर्शी। उसने बतलाया कि गांधी जी के अन्दाज़े-ख़ास से चले जाने के बाद पहले तो उसकी ऑंखों के आगे विचित्र बिजली-सी चमक गयी। फिर, वह सोचने लगा—महात्मा की अदाएँ भी माशूकाना ! तप के कैसे तेवर, बाहरी-रूप पर आन्तरिक-अनुराग के कैसे खुशरंग, महात्मा बदशक़्ल नही, ख़ूबसूरत; प्रेत नहीं, प्रेमी, मामूली आदमी नहीं, फरिश्ता— आह ! चटकना लगा ख़ुर्शेद के गालपर ! फ़रिश्ता-ख़सलत उसके सामने आकर चला गया और उसने पहचानने मे देर लगाई ! न खिंच सका, न खींच ही। वह अपनी बेवक़ूफ़ी पर पानी-पानी हो रहा—सजल। उसी अवस्था मे जिसमे तुलसीदास ने गाया था—"सजल नैन, गदगद गिरा, गहबर-मन, पुलक सरीर।" और कलाकार ने 'केनवास' का दूसरा रुख़ पलटा कला की स्वच्छ, नव्य-भूमिका उसकी ऑंखों के आगे खिल गयी। हृदय उमड़ा, समुद्र लहराया, ॲंगुलियॉं हिलीं, चारकोल बह चला, लकीरें तरङ्गो मे तैरने लगीं। ख़ुर्शेद तन्मय होकर कला-कर्म-रत हुआ, तो रङ्ग आ गया ! बतलाया उसने कि ३६ घण्टे वह वहाँ से उठा नहीं। कोई हाजत ही दरपेश न आई। कंचनराम के बाप ने कहा—मरेगा बुड्ढा क्या ! पर बुड्ढा ख़ुर्शेद उठा, तो अमर होकर ही उठा ! क्या तस्वीर बनाई थी जानदार मुसव्विर ने कि जिसने देखा वही दंग—रंग-रग—रह गया ! तस्वीर में

दाहने हाथ मे कटार और बाएँ मे प्रफुल्ल-पद्मधारी, सजीले, नट-खट जान-मारू किशोर कंचनराम के सामने संपुटित कमल की तरह हाथ जोड़े, क्षमा की मूर्ति की तरह नत-मस्तक, अधनंगे, शान्त, अमर सन्देशवाहक महात्मा गांधी खड़े थे। चित्र देखने से ऐसा लगता था गोया हिंसक बालक अहिंसक महात्मा के प्रसाद से शान्त विचार-मग्न हो गया था और उसके हाथ की कटार ज़रा झुक गई थी।

"देखिये!" कंचनराम जी के पिता को वह चित्र देते हुए ईरानी कलाकार ख़ुर्शेद ने कहा था—"यह साधारण चित्र नहीं; इसमे मैंने अपनी जान डाली है। यह जीवित चित्र है! जब तक आपका पुत्र ईमानदार रहेगा तब तक चित्र ज्यों का त्यों रहेगा। मगर, उसके पथ-भ्रष्ट, बेईमान, हिंसक होते ही चित्र मे फर्क आ जायगा।" वही चित्र उस कमरे मे है! मै यह देखना चाहता हूँ कि चित्रकार ने सच कहा था या झूठ। क्योंकि कंचनराम जी अच्छी तरह नीति-भ्रष्ट हो चुके यह हम सब उनके हम-प्याला, हम-नेवाला होने से बहुत अच्छी तरह जानते हैं। वह—कंचनराम जी आरहे हैं। चलकर ज़रा वह तस्वीर आप देखे, तो आँखे खुल जायेगी।

नेता जी के आते ही पहला आग्रह मित्रो ने यह किया कि ख़ुर्शेद की वह दो-रुखी तस्वीर उन्हे दिखायी जाय। पंजाबी इंजी-नियर कान्ट्रेक्टर के बतलाये कमरे मे मित्र-मंडली, कंचनराम की इच्छा को ठगे पर मार, उसी तरह पिल पड़ी—जैसे काश्मीर की सीमा मे लुटेरे।

पहले तस्वीर का जो रुख मित्रो के सामने आया उसमे कंचन राम की कमसिनी कमनीय थी—कुछ ऐसी कि नेता-राज स्वयं कह उठे—"पहले मै कैसा था!"

इस पर सिख सरदार ने ताना दिया—"पर आज ज़रा

दर्पण में मुखड़ा देखें। हंस और चंडूल, गुलाब और भटकटैया जितना फ़र्क। अब ज़रा इसके पीछे वाली तस्वीर तो देखिये। कमाल उसी में है। उसी के बारे मे खुर्शेद ने पेशेनगोई की थी।"

इस पर नेता ने नाक फुलाकर कहा कि "कलाकार की भविष्यवाणी और कलवरिया के कोलाहल में मुझे तो आज तक कोई सार दिखायी नहीं पड़ा। उसने कहा था तस्वीर बदलेगी—, मगर तीस बरस गुज़र गये—न बदली, न बरसात। भला तस्वीर भी कहीं बदलती है। नौ हाथ की हर्रें, चार अँगुल की ज़ुबान! उसने कहा था कि जिस दिन मैं सत्य से, त्याग से, यकरंगी प्रेम से गिरूँगा, उसी दिन चित्र के बाएँ हाथ में जो प्रस्फुटित कमल है, संकुचित होकर झुक जायेगा और दाहने हाथ की कटार सामने खड़े महात्मा गाधी के सीने की तरफ सध जायेगी। साथ ही मेरा खूबसूरत मुखड़ा स्याह पड़ जायगा। पर आज तक हुआ कुछ नहीं, किया मैंने सब-कुछ—तुमसे क्या छिपा है?"

लेकिन तस्वीर का दूसरा रुख़ देखकर पंजाबी उछल पड़ा—"लो कंचनराम जी, देख लो! तुम्हारे हाथ का कमल मुरझा गया। कटार महात्मा की तरफ मुड़ गयी। ओह! हिप-हिप हुर्रे! कलाकार, भविष्यद्वक्ता, खुर्शेद! खुदा तुझे सलामत रखे! बेशक तस्वीर बदली हुई। वही हाथ, वही मुँह, वही मूरत, पर, 'पोज़' बदला। हैरत! कंचनराम का चेहरा देखा, तो पिटा हुआ तांबा!

"यह बदल कैसे गयी—खुर्शेद! खुर्शेद!!" नेता-राज के मुँह से निकला।

"खुदा सब-कुछ देखता है।" पंजाबी ने मंज़ूर किया ताने से—"उसकी अपनी आँखे नहीं। सर्वदर्शी, विश्व-विलोचन वह, अक्सर, बन्दों की आँखों की दूरबीन बनाकर दूभर दूर भविष्य का 'एनलार्जित'-मार्जित—रूप देख लेता है। जिसको बीनाई बख़्शे

परवरदिगार ! तेरे अन्तर का द्रष्टा, तो चित्र-स्रष्टा यह ख़ुर्शेद ही है आज। पर अफ़सोस ! आज तू कैसा जानी दुश्मन है ख़ुर्शेद का कि उसे एक बार न मार बोटी-बोटी कर रहा है। उसकी 'मॉडल-गर्ल' 'शमा' पर तेरी बदनज़र है। तेरे डर से रुस्तम से शमा की शादी ख़ुर्शेद ने बरसों-जल्द कर दी थी; पर, चार दिन पहले, तूने दंगे के बहाने ख़ुर्शेद के घर—आये दामाद को मरवा डाला। अब 'शमा' तेरी, रोशनी तेरी, महफिल तेरी। क्या ख़ूब तस्वीर बदली है ! कल का परम-वैरागी, आज का पतित-अनुरागी ! कल का जन-सेवक, आज का तन-सेवक ! सत की दोहाई देने वाले के चित्त का यह चिन्तनीय चित्र-विचित्र !

नेता अभागा पहले अवाक् रहा। फिर सबसे पहले उसे गुस्सा आया कलाकार ख़ुर्शेद पर। "मैं—उसे अभी पकड़वा मँगाता हूँ। मेरी इच्छा ही आज्ञा है इस शहर में। यह तस्वीर नहीं, मान-हानि है—'क्लीयर'। नेता की मान-हानि का नतीजा जान-हानि। साले की जान न ले लूँ, तो मेरा नाम कंचनराम नहीं।"

इस पर पंजाबी सरदार ऐसा सरसराया, जैसे सरसर—"मैं कहता हूँ, मुझे बहुत बकाइये नहीं, नेता जी ! इस बार मुझे ऐसी पड़ी है कि दार्शनिक बन गया हूँ—भले तमीज़ दार्शनिक के जूते के फीते खोलने का भी न हो। क्यों मारेगा भाई ख़ुर्शेद को ? क्योंकि वह भविष्यवक्ता है ? कलाकार है ? एक 'नेतुल्ले' से कहीं ज़्यादा रोशन-दिल, रोशन-दिमाग़, रोशन-आलम है ? जब कि कलाकार की पूजा होनी चाहिए, तू जलता है ? दीपक की तरह नहीं, दीवाने परवाने की तरह नहीं, दोज़ख़ की तरह ! मृत्यु से लाल तेरे वे नेत्र कलाकार की तरफ़ नहीं—महात्मा की तरफ़—यह धार-दार हथियार उसी समझदार के सीने की तरफ़ सधा हुआ है। यार ! तू हमारा सरदार, नेता, तू ही गिरेगा तो उठेगा कौन?

तू तपाया हुआ, तू तपा हुआ, इस ठंडी राख को उतार ! नहीं तो, आ ! आगे बढ़ ! पहले मुझे मार डाल ! कुकर्मों के लपट में बँधे—पहले मेरी दोज़खी-जलन दूर कर। .खुशामद नहीं, तू सब-कुछ कर सकता है। यह वर्तमान तेरा असिल-रूप नहीं; भ्रम है। मानस पर काई। हमारे इन्हीं पापो के सन्ताप से राष्ट्र-पिता, राष्ट्र-गुरू, ज्ञानी, महात्मा क्षण-क्षण घुट-घुट कर बेदम बना जा रहा है। जिस कामधेनु ने कोटि कोटि गुमराहों को आज़ादी के कल्प-वृक्ष तक पहुँचाया उसे कुकर्म-कसाई के हाथ तू नहीं बेचेगा। कुलवन्त कृतघ्न नहीं हो सकता। विष्ठा खाने वाली गाय भी दूध ही देती है, मद नहीं, हलाहल तो हरगिज़ नहीं। बराबर ऊँचे से राह बतलाने वाला नेता ही निचाई पर आ जायेगा, तो जनता अनजान का क्या होगा ? एक-सौ-पच्चीस बरस तक जीने के इच्छुक महात्मा, कर्म-योगीश्वर ने हमारे पापो से परम पीड़ित होकर जीने की आशा छोड़ दी है। जब गाँधी जी ही नही जीते रहेंगे तो कौन अभागा जीवित रहेगा ?"

और कुयोग देखिये। इसी वक़्त, कोई साढ़े छः बजे शाम, तार वाले की आवाज़ बाहर से आई। समाचार भयानक आया। सवा पाँच बजे, प्रार्थना से पहले, पिस्तौल से, चार, गोलियाँ दाग़ गोडसे नामक किसी हिन्दू-तरुण ने महात्मा गाँधी को मार डाला ?

और अब आगे की कथा—भोज-भंग, रस-भंग—आप न पूछें—आह ! वर्णनातीत !

हाँ, इतना और बतला देना कहानीकार का धर्म है कि दूसरे दिन कंचनराम ने अपनी सारी पाप-कमाई, दस लाख की रक़म में से नौ लाख नक़्द, हरिजन-फन्ड मे दान कर दी और दसवाँ लाख नज़र करने चले बूढ़े ईरानी ज्ञानी चित्रकार .खुर्शेद को। पर उसके घर पहुँचने पर पता चला कि बारह घंटे पहले महात्मा जी

के मरने की खबर सुनते ही सहृदय कलाकार के हृदय की धड़कन बन्द हो गई थी। कफन-दफन तक खत्म हो चुका था। ख़ुर्शेद के घर में दिन दोपहर मे अँधेरा था!

केवल 'शमा' जल रही थी। बूढ़े कलाकार की नवोढ़ा मॉडल-गर्ल—वह हसीन छोकरी!

१५

मूर्खा

अम्माँ का नाम गुलाबो, मुँह देखो तो छुहारा, आकृति धनुष की तरह। गुलाबो अम्माँ की अवस्था अस्सी और पाँच पचासी वर्ष।

अम्माँ का ख़ासा परिवार। बेटे तीन—राम, काम और दाम जिनके 'लघु' नाम। पूर्ण नाम रामेश्वर, कामेश्वर और दामोदर। रामेश्वर—कांग्रेसी, कामेश्वर—कम्युनिस्ट तथा दामोदर—हिन्दू-सभाई।

मगर, कहानी यह राजनीतिक-दुर्भावना-प्रधान नहीं, सामाजिक-भावना-प्रधान है। घर मे एक गाय को लेकर काफी कलह। उस गाय को कामेश्वर या कम्युनिस्ट लड़के ने बारह साल पहले तीस रुपये में ख़रीदा था। दस साल उसने, बराबर सारे परिवार को, तीन सेर रोज़ाना से लेकर आठ सेर रोज़ाना तक दूध पिलाया। उसके छः बछड़े, छोटी उम्र मे ही, कुल मिलाकर ढाई सौ रुपये में बेच लिये गये और चार बछियाएँ डेढ़-सौ रुपये मे। पर, अब, उस गाय में कोई तत्व नहीं; ठठरी मात्र रह गयी है। बुढ़ापे से धुँधली, कीच-मयी आँखे। किसी को भी अब उससे कोई उम्मीद नहीं। सबको अब वह द्वार की कुशोभा और गन्दगी फैलाने वाली मालूम पड़ती है।

केवल गुलाबो अम्माँ उस गाय की पक्षपातिनी;—और प्रचण्ड। बिना उनके प्राण निकाले क्या मजाल जो कोई गौमाता को घर के बाहर निकाल देता। जवानी में दूध किसी ने पीया हो; पर, बुढ़ापे में, गाय के लिए अपना ख़ून पानी करने वाली हैं, तो गुलाबो अम्माँ! मुँह देखो, तो छुहारा, आकृति धनुष की तरह। गुलाबो अम्माँ अस्सी-पाँच-पचासी वर्ष की वय में जैसी बूढ़ी, वैसी ही वह गाय, पन्द्रह वर्ष की अवस्था में!

"इसे बेच दें अम्माँ?" कम्युनिस्ट ने आज्ञा चाही।

"इसे ख़रीदेगा कौन? यह न तो अब फलेगी, न दूध ही देगी।" अम्माँ ने बेचने की भावना को अनुत्साहित किया। पर, कम्युनिस्ट अर्थ-पिशाच-युग का प्राणी:

"कसाई इसे हँसी-ख़ुशी से पच्चीस-तीस रुपये में ले लेगा अम्माँ।" और अपनी कोख से जन्मे पूत के मुँह से ऐसी घातक-बात सुनने के बाद अम्माँ ने तीन दिन, तीन रात अन्न और जल ग्रहण नहीं किया!

कांग्रेसी बेटा रामेश्वर या राम ने एक दिन समझाया—"अम्माँ, ज़माना मँहगाई का है और इस गाय पर रुपया-सवा-रुपया रोज़ सर्फ़ा पड़ जाता है। इसे 'पिंजरापोल' पठा दें, तो कोई आपत्ति है तुम्हे? वहाँ यहाँ से अधिक सुख में रहेगी।"

"ज़माना मँहगाई का है, तो मुझे भी किसी 'पिंजरापोल' में भर्ती करा दे। दूध पीया हमारे परिवार ने, सेवा करे 'पिंजरा-पोल'? यह भी कोई इन्साफ है? इस पर एक रुपया रोज परिवार नहीं ख़र्च सकता, तो मैं आधा-पेट खाऊँगी और मेरे पेट का आधा यह खायेगी।"

और सारा घर ख़ुशामदे करते-करते हार गया, पर, उस दिन के बाद गुलाबो अम्माँ ने कभी दोनो जून जम कर खाया नहीं!

हिन्दू-सभाई या छोटा लड़का दामोदर सबसे चघड़ निकला। उसने तय किया गुलाबो अम्माँ के सो जाने पर, आधी-रात में गाय को नगर की सीमा के बाहर हॉक आने का। उसने अम्माँ अनजान को तो धोखे में रखा, पर, ऐन वक़्त पर वह गाय गोया उसके बद-इरादे को ताड़ गयी और बन्धन मे हाथ लगाते ही बॉ-बॉ कर मानो गुलाबो अम्माँ को पुकारने लगी। अम्माँ भी पुकार सुनते ही गाय के थान पर।

"क्यों रे! यह क्या कर रहा है?"

"अम्माँ!" खीझ-भरे स्वर मे हिन्दू-सभाई लड़के ने कहा—"इसके मारे सारे घर मे गन्दगी, जिधर देखो गोबर-ही-गोबर सीधे से तुम इसे कभी न निकालती, सो, मैंने सोचा रातोंरात बाहर हाँक आऊँ।"

"किसके भाग्य, कि सारे घर में गोबर-ही-गोबर नज़र आये कि—अभागे! गोबर में लक्ष्मी का निवास है। मैं आज अन्तिम बार कहे देती हूँ। गाय घर से बाहर निकली और दाना-पानी छोड़, मैंने प्राण देने का निश्चय किया। मेरी ज़िन्दगी में ऐसी बेइन्साफी नहीं हो सकती, कि जिसने हमारे लिए सारी ज़िन्दगी खून का पानी नहीं, दूध बनाया; उस अनबोलते-पशु को बुढ़ापे में घर से बाहर निकाल दिया जाय। यह भी परिवार की प्राणी है, काल-गति से वैसे ही कमज़ोर बनी हुई, जैसे कि मैं हूँ।"

गुलाबो अम्माँ के आर्य-इन्साफ के रोब से थर्राकर दामोदर चोरों की तरह चुपके से जब टरक गया तब अम्माँ ने गाय की तरफ करुण-दृष्टि से देखा और गाय ने अम्माँ की तरफ कृतज्ञ-दृष्टि से! वह पशु-भावना से भभर कर काँपी या सहज ही उसकी चमड़ी में कम्पन हुआ, पर, अम्माँ ने समझा कि उसको ठंड लग रही है। रातें भी तो पूस-माह की हैं!

"और इसका मुझे ध्यान ही न रहा! मैं भी कैसी मूर्खा...!"

वह झपटी हुई अपने सोने वाली कोठरी में गयी। उसके ओढ़ने के कम्बल दो। एक साबूत, दूसरा पुराना, झिल्लड़। पहले अम्माँ ने झिल्लड़ कम्बल उठाया, फिर, कुछ सोचकर रुकीं—"जिसने अपने बच्चों का पेट काटकर मेरे बच्चों को दूध पिलाया उसे झिल्लड़ नहीं, अच्छा कम्बल ही ओढ़ाना सनातन-धर्म है। कम-से-कम जब तक मैं ज़िन्दा हूँ। मेरे बाद चाहे जो भी हो।"

गाय को उत्तम कम्बल ओढ़ा, स्वयं झिल्लड़ ओढ़े, सोने की कोठरी की तरफ लौटती हुई पीछे मुड़कर गुलाबो अम्माँ ने यह ताड़ने की चेष्टा की कि अब तो वह काँप नहीं रही। गाय ने भी विचित्र सुख और अपनत्व से अम्माँ की तरफ देखा। अम्माँ की आँखों मे करुणा थी, गंगा की तरह! गऊ की आँखों मे कृतज्ञता थी; मुक्ति की तरह!

● बस ●